CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

आचार्य समन्तभद्र

दोहानुवाद : मुनि श्री समता सागर

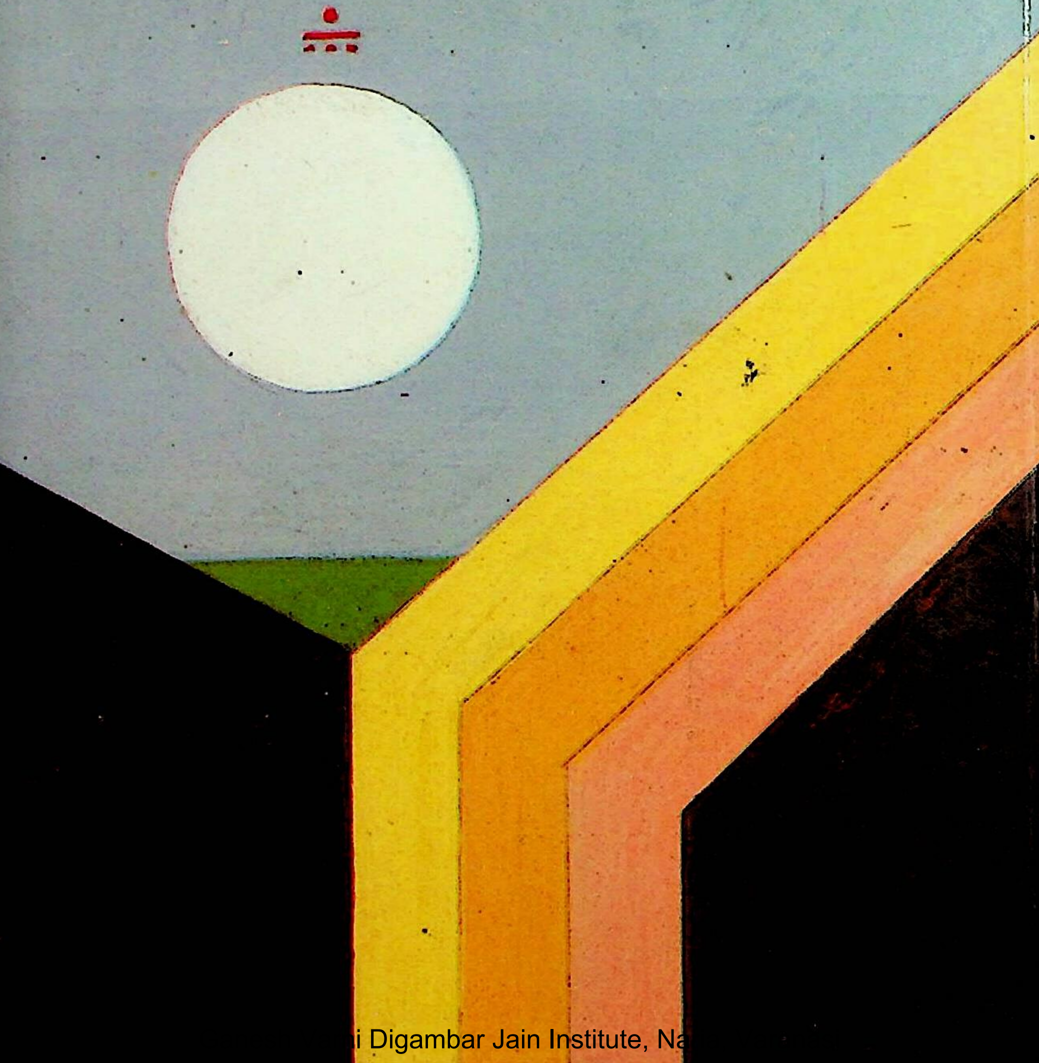

i Digambar Jain Institute, Na

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

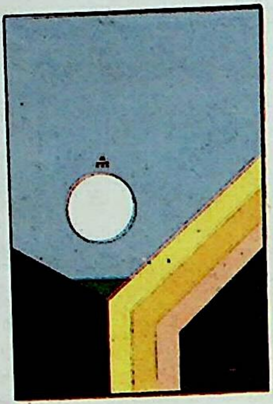

रत्नकरण्डक श्रावकाचार रत्नत्रय धर्म का व्याख्यान करने वला शिरोमणि ग्रन्थ है। संस्कृत भाषा में निवद्ध 150 श्लोक प्रमाण यह ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त है। उद्भट दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र (द्वितीय शताब्दी) महाराज की यह लघुकाय कृति "गागर में सागर" की युक्ति को चरितार्थ करती है। श्रद्धा से लेकर समाधि तक, श्रावक के आचार विचारों का व्याख्यायक यह धर्मग्रन्थ वास्तव में रत्नकरण्डक (पिटारा) ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान्यवर, प्रो० श्री उदयचन्द्र जी सर्वदर्शनाचार्य

यह पुस्तक आपकी सेवा में सादर भेंट स्वरूप समीक्षा एवं ट्रस्ट के मार्गदर्शन हेतु प्रस्तुत है।

प्रतीक्षारत,

विनीत

[कपूरचन्द पोतदार]

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
4498
29-7-99
नरिया (का. हि. वि. वि.) वाराणसी-5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

आचार्य समन्तभद्र

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
नं. 4998
29-7-99
(का. हि. वि. वि.) वाराणसी

दोहानुवाद

मुनि समतासागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

☐ रत्नकरण्डक श्रावकाचार

आचार्य समन्तभद्र

☐ दोहानुवाद

मुनि समतासागर

☐ आवरण पृष्ठ

संतोष जड़िया, इन्दौर

☐ प्रथम संस्करण

2000 प्रतियाँ / 1995

☐ प्रकाशक

श्री कपूरचन्द जैन पोतदार

अध्यक्ष

पोतदार धार्मिक एवं पारमार्थिक न्यास

पोतदार निवास टीकमगढ़ म.प्र.

☐ व्यवस्था राशि

21/- रुपया

☐ प्राप्ति स्थान

१. श्री कपूरचन्द जैन पोतदार
पोतदार निवास टीकमगढ़ म.प्र.
फोन - 32394 S.T.D 07683

२. अरविन्द कुमार जैन (चावल वाले)
निवाड़गंज, जबलपुर
फो न - 343178 S.T.D. 0761

☐ कम्पोजिंग

मे. लेसर प्रिन्ट वर्ल्ड,

गोलबाजार, जबलपुर फोन - 311730

☐ मुद्रक

सिंघई आफसेट

669, सराफा, जबलपुर फोन - 341006

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

जिनके आशीष की
सुखद छाँव तले
पले, सीखे और चले
उन पथ पाथेय प्रदाता
समता समाधान दाता
सर्वोदयी - शास्ता
जीवन - शिल्पी के
सृजनशील कर कमलों में
सविनय समर्पित

चरणानुरागी
मुनि समतासागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

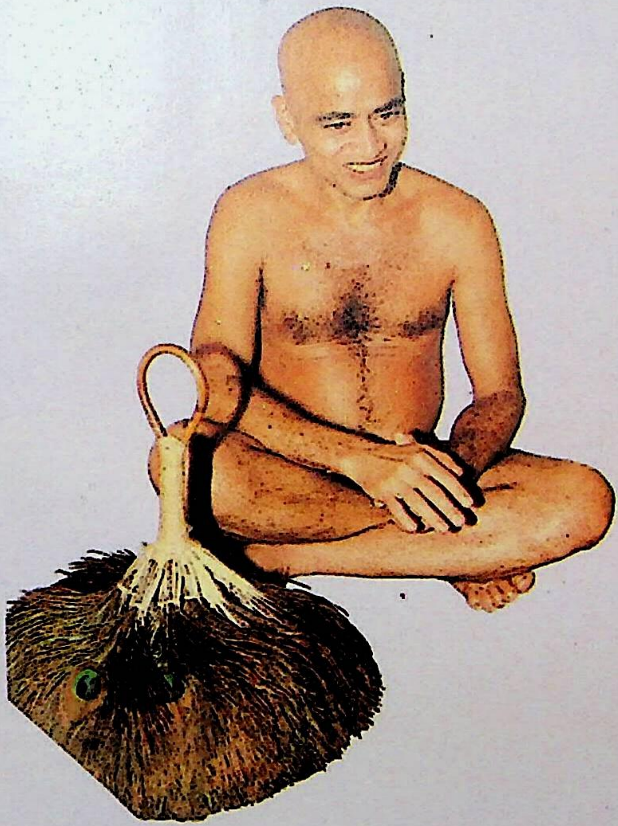

दिगम्बराचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी मुनि महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर-गत

रत्नकरण्डक-श्रावकाचार श्रावक के आचार विचारों को दर्शाने वाला एक सरल सुबोधग्रन्थ है। यह एक ऐसा जीवन-दर्पण है जिसके सामने खड़े होकर अपने आपको आर-पार देखा जा सकता है। सभी श्रावकाचारों के मध्य आचार्य समन्तभद्र महाराज {दूसरी शताब्दी} द्वारा लिखी गई इस कृति का अद्‌भुत वैशिष्ट्य है। श्रद्धा से लेकर समाधि तक का वर्णन करने वाले इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सार संक्षेप में भी रत्नत्रय का बड़ा ही सुन्दर विवेचन है। इस पर आचार्य प्रभाचन्द्र जी द्वारा लिखी गई संस्कृत टीका भी उपलब्ध है। समय-समय पर हिन्दी गद्य टीका और पद्यात्मक रचनायें भी इस ग्रन्थ पर काफी हुईं। जिसमें पं. सदासुखदास जी की वचनिका और पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य की हिन्दी टीका सुपरिचित ही है। आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा ब्र. अवस्था में लिखी गई "मानव धर्म" के नाम से गद्य में व्याख्या एवं आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा "रयणमञ्जूषा" के नाम से किया गया पद्यानुवाद जनमानस में व्याप्त है।

मेरे मन में बहुत दिनों से विचार था कि रत्नकरण्डक पर कुछ लिखूँ। समय आया, आचार्य श्री ने ग्रीष्मावकाश १९९३ बीना बारहा [देवरी] में इस ग्रन्थ की वाचना की। उस पर उनके सारगर्भित प्रवचन हुये। मन में विचार आया कि दोहे की विधा सरल है, सरस है, इसे समझने एवं याद करने में कठिनाई नहीं जाती। क्यों न अत्यन्त लघुरूप में ही इस ग्रन्थ का दोहों में अनुवाद किया जाय। फिर क्या ? विचार संकल्प में परिवर्तित हुआ और अनुवाद का कार्य शुरु हो गया। ग्रन्थ के १५० श्लोकों का अनुवाद १५० दोहों में ही किया है। यद्यपि यह कार्य कठिन था क्योंकि श्लोकों के विस्तृत गम्भीर अर्थों को दोहों में ज्यों का त्यों लाना सहज नहीं था। फिर भी गुरुवर के आशीष से कार्य में सरलता रही। कुछ श्लोकों को छोड़कर लगभग सभी में मूलानुगामी ही परिपूर्ण अनुवाद हुआ है, जो सभी के सामने है।

इसे क्षेत्र का प्रभाव कहें या आचार्य श्री का आशीर्वाद कि करीब एक माह में ही यह कार्य पूर्ण हो गया। श्लोकों का अन्वय और भावार्थ लिखते समय पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य कृत अन्वय एवं ब्र. भूरामल जी (आचार्य ज्ञानसागर जी) के द्वारा लिखित "मानवधर्म" विवेचना का आधार लिया गया है। इसमें शीर्षक, श्लोक, दोहा, अन्वय और भावार्थ को एक साथ एक पृष्ठ पर ही इसलिये रखा गया है ताकि शुरुआती पाठक आचार्य समन्तभद्र स्वामि के भावों को ऋजुता से समझ सकें। स्वाध्याय प्रेमी श्रद्धालुजन रत्नकरण्डक के हृदय को समझें तथा अपने जीवन को रत्नकरण्डकमय बनायें इसी भावना के साथ . .

—मुनि समतासागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

यह ग्रन्थ श्रावकाचार का है । इसके रचयिता आचार्य समन्तभद्र हैं। यह एक प्राचीन आचार्य हैं। जिन्होंने कठिन विपत्तियाँ सहकर भी आचार्य पद की रक्षा की थी । ये न्याय शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट लेखक थे । इन्होंने "गंधहस्ति महाभाष्य" नामक ग्रंथ की रचना की थी, जिसका प्रमाण ८४००० श्लोक है । यह न्यायशास्त्र का सर्वोत्कृष्ट विस्तृत न्याय ग्रंथ है । इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर पाया जाता है, परन्तु ग्रंथ आज तक पाया नहीं गया । जिसका केवल मंगलाचरण ११० श्लोक प्रमाण है। जिसमें न्याय की प्रबल युक्तियों से जिनदेव के शासन को सर्वोत्कृष्ट सिद्ध किया गया है । इस श्लोकात्मक मंगलाचरण की टीका ८०० श्लोकों में आचार्य अकलंक देव ने की है तथा आचार्य विद्यानन्दि ने उन श्लोकों की विशद टीका की जो ८००० श्लोक प्रमाण है, जिसे अष्ट सहस्री कहते हैं । उन्हीं आचार्य समन्तभद्र महाराज की सबसे सरल कृति "रत्नकरण्डक" श्रावकाचार है जिसकी हिन्दी टीका विशदरूप से पं. श्री सदासुख दास जी ने की है । जिसका वाचन समाज में सर्वत्र आबालवृद्ध किया जाता है । फिर भी उसे जनता के लिये अत्यन्त सरल बनाने के लिए हिन्दी भाषा में १५० दोहा प्रमाण रचना वर्तमान के सुप्रसिद्ध वीतरागी मुनिश्री १०८ समतासागर जी ने सर्वहित के लिये की है, जो पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है ।

विशेषता -

यह इच्छा स्वाभाविक है कि यह बताया जाय कि इस ग्रंथ की विशेषता क्या है ? इसकी विशेषता यह है कि संस्कृत भाषा से हिन्दी भाषा में दोहा छंद में अनूदित किया गया है इसलिये कि सर्वसाधारण छोटे बड़ों को पढ़ने में सुगमता हो ।

दूसरी विशेषता यह है कि यह अनुवाद एक वीतरगी साधु द्वारा किया गया है जिसमें मूलभाव की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा गया है । सामान्य गृहस्थ के द्वारा की गयी रचना में अनेक दोषों की सम्भावना रहती है किंतु वीतरागी होने के कारण साधु का ध्यान मुख्यतः इस बात पर रहता है कि लेखन में भले ही छन्द में एक-दो अक्षर या शब्द घट बढ़ जाय पर भाव की सुरक्षा पूर्ण रहे । यदि कदाचित पूरा शब्द दिये बिना ग्रंथकार का भाव स्पष्ट न होता हो तो भी ऐसे समय में मूल भाव की ही सुरक्षा की जाती है ।

सबसे बड़ी विशेषता तो इस अनुवाद की यह है कि अभी तक के अनुवादों में यह सबसे छोटा अनुवाद है । इसे पढ़ने से छोटे-छोटे बालकों को भी इसका भाव सहज ही समझ में आ जाता है उन्हें भाषा की कठिनता आड़े नहीं आती । इस अनुवाद का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चातुर्मास का सम्बन्ध -

इस वर्ष १९९४ में कटनी में मुनि संघ का चातुर्मास प्रभावना से सम्पन्न हुआ। जिसमें अनेक कार्यक्रम हुये। यह चातुर्मास आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रभावक शिष्यगण मुनि श्री समतासागर जी मुनि श्री प्रमाण सागर जी एवं ऐलक श्री निश्चय सागर जी के सानिध्य में हुआ। इस चातुर्मास की उपलब्धि यह हुई कि इस ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है टीकमगढ़ निवासी स्वाध्यायी श्रावक कपूरचन्द्र जी पोतदार इसका प्रकाशन करा रहे, यह बड़ी खुशी की बात है।

इसके अलावा भी मुनि श्री ने द्रव्य संग्रह, इष्टोपदेश, एवं अष्टपाहुड का भी दोहों में ही अनुवाद किया है जो कि समय-समय पर प्रकाशित होगें। यह महाराज श्री का हम सभी पर उपकार है जनता को इसका लाभ उठाना चाहिये। ६ तारीख को पिच्छिकापरिवर्तन का कार्यक्रम सानंद सम्पन्न हुआ, जिसमें पूज्य मुनि श्री की पुरानी पिच्छिका ग्रहण करने का सौभाग्य हमारे परिवार को प्राप्त हुआ। हमें आशा है कि इसी तरह महाराज श्री के चरणों की कृपा सदा बनी रहेगी।

पं. जगन्मोहन लाल जी "शास्त्री" कटनी

७।११।९४

पिच्छिका परिवर्तन दिवस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय निवेदन

"रत्नकरण्डक श्रावकाचार" श्रावकों की चर्या बतलाने वाला एक धर्म ग्रन्थ है। जिसमें रत्नत्रय को धर्म निरूपित करते हुये सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित वर्णन किया गया है। सम्यक्चारित्र के प्रकरण में श्रावक धर्म का कथन करने से इसे श्रावकाचार कहते हैं। आचार्य समन्तभद्र स्वामी विरचित १५० श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है जिसकी हिन्दी टीकाओं का पठन-पाठन समाज में सर्वत्र प्रचलित है। परमपूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने "रयण मञ्जूषा" की रचना कर रत्नकरण्डक श्रावकाचार को पद्यात्मक रूप दिया एवं **योग्यतम गुरु के योग्य शिष्य पूज्य मुनिवर श्री समतासागर जी महाराज ने उक्त ग्रन्थ का दोहानुवाद कर "गागर में सागर" की उक्ति को चरितार्थ किया है,** क्योंकि भावों की सम्पूर्ण सुबोधगम्य एवं मधुर अभिव्यक्ति के लिये दोहा अपने आप में एक सशक्त माध्यम है ।

अमरकंटक में "**सर्वोदय तीर्थ**" की स्थापना आचार्य श्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद का ही फल है । यह तीर्थ क्षेत्र अपनी पौराणिक एवं धार्मिक संस्कृति लिये सुरम्य पर्वतमाला तथा वन श्रृंखलाओं से युक्त ऐसा लगता है मानो सभी को शान्ति और साधना का ही आमंत्रण दे रहा हो। आदिवासी अंचल से जुडें हुये इस क्षेत्र में करीब पाँच माह रहकर आचार्य श्री जी ने जो धर्म प्रभावना की, वह अद्भुत थी आज भी यादगार बनी हुई है। यहाँ के शीतल-शान्त वातावरण के मई १९९४ में " **सर्वोदय ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर**" का आयोजन किया गया था जिसमें ससंघ आचार्य श्री के दर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त करने का हमें भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवसर पर **शिविर में पधारे प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी, फिरोजाबाद वालों से पूज्य मुनिवर समतासागर जी द्वारा रचित उक्त दोहानुवाद की जानकारी मिली एवं यह भी ज्ञात हुआ किं अनुवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है अतः इसका शीघ्र प्रकाशन होना चाहिये।** मैंने तुरन्त जाकर पूज्य महाराज श्री से निवेदन किया तो उन्होंने कहा कि देखेंगे, समय आने दो, अभी आचार्य श्री से बात करनी है कहकर बात टाल दी। मैंने प्राचार्य जी से भी निवेदन किया तो उन्होंने कहा कि ध्यान रखेंगे ।

मेरे जीवन में परिवर्तन-दिशा निर्देशन २६ वर्ष की उम्र में, जब समाज ने मुझे श्री १०८ अतिशय क्षेत्र पपौरा जी का मंत्री बनाया, तब से आरम्भ हुआ। बुन्देलखण्ड प्रान्त प्राचीन काल से ही जैन धर्म - संस्कृति और कला का केन्द्र रहा है और आज भी यहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गगनचुम्बी विशाल मंदिरों के साथ अनेक क्षेत्र विद्यमान हैं। धार्मिक एवं तीर्थ सेवा के माध्यम से समाज व धर्म के अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आए, परिचय हुआ व शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ और सर्वप्रथम १०८ पूज्य आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का ससंघ चार्तुमास कराने का सौभाग्य हमें वर्ष १९६४ में प्राप्त हुआ, उनका न केवल आशीर्वाद ही मिला वरन् मेरे जीवन व चारित्र में कायापलट हुई। हमें आज भी स्वप्न में प्रायः उनसे मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद मिलता रहता है।

वर्ष १९८५ में जब अहार जी एवं १९८६ में पपौरा जी क्षेत्र में आचार्य श्री १०८ मुनिवर विद्यासागर जी महाराज का ससंघ चार्तुमास हुआ और दीक्षायें हुई, यह अनुपम सौभाग्य, शिक्षण व आनंद का समय रहा। पपौरा जी में हमने आचार्य श्री जी से निवेदन किया कि पपौरा जी क्षेत्र की विशालतम क्षमता का उपयोग : बुन्देलखण्ड व भारत के मध्य में स्थित और शान्ति क्षेत्र होने के कारण : आचार्य श्री जी ससंघ करें, यह जरूरी है तब उन्होंने कहा कि "समय आने दो मेरी दृष्टि में है"।

हमारे मन में बहुत समय से यह तीव्र इच्छा थी कि आचार्य श्री से आशीर्वाद प्राप्त करके एक ऐसा केन्द्र स्थापित किया जाये जहाँ से जिन-धर्म, जिन-वाणी एवं आचार्य श्री का सत्साहित्य प्रकाशित किया जा सके। आचार्य श्री का आशीर्वाद प्राप्त कर हमने इसी निमित्त से एक स्थायी न्यास "**पोतदार धार्मिक पारमार्थिक न्यास**" की स्थापना का निर्णय लिया एवं न्यास की स्थापना की। यह हमारा परम सौभाग्य रहा कि कटनी चार्तुमास में हमें पूज्य मुनि श्री समतासागरजी, मुनि श्री प्रमाणसागर जी एवं ऐलक श्री निश्चयसागरजी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हुआ और प्राप्त हुई "रत्नकरण्डक श्रावकाचार" के दोहानुवाद ग्रन्थ को प्रकाशित करने की अनुमति।

यह भी हमारा सौभाग्य रहा कि कटनी में अवस्थित **जैन वाङ्मय के मूर्धन्य वयोवृद्ध विद्वान आदरणीय जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने हमारे अनुरोध पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुये उक्त लघुकाय ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखी**। यह उन वृद्ध विद्वान का हम पर परम उपकार है। हम उनके आभारी हैं। चि. देवेन्द्र ने मुनिवर जी के पास बार-बार पहुँचकर प्रकाशन कार्य में जो तत्परता दिखाई वह निश्चित ही उसकी धार्मिक लगन की परिचायक है। महाराज श्री की प्रभावना से प्रेरित कटनी निवासी अजित जैन (सिंघई ब्रदर्स) ने ग्रन्थ के आकर्षक कव्हर पृष्ठ को अपनी ओर से ही तैयार कराया है। अनुवाद की प्रेस कापी तैयार की बिटिया डॉ. कु. मनीषा जैन पेन्ड्रारोड ने एवं ग्रन्थ के निर्दोष मुद्रण में कमलेश जैन "पार्श्व" एवं सिंघई आनंद जैन जबलपुर का भी उल्लेखनीय सहयोग रहा है। मैं उक्त सभी सहयोगीजनों का भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आभारी हूँ।

हमारे न्यास का यह प्रथम सोपान पुष्प है। त्रुटियाँ स्वाभाविक है, मनीषीजन हमारा मार्ग प्रशस्त करें। हमारा यह प्रयास मानस के आचार विचारों को नियोजित करने में सहायक हो, इसी भावना के साथ पूज्य गुरुवर के चरणों में शत्-शत् नमन् !

निवेदक
कपूरचन्द्र जैन पोतदार
अध्यक्ष,
पोतदार धार्मिक एवं पारमार्थिक न्यास,
पोतदार निवास, टीकमगढ़, म.प्र.

दिनाँक : ४.२.१९९५
"बसन्त पंचमी"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
1. सम्यग्दर्शनाधिकार	2-42
2. सम्यग्ज्ञानाधिकार	43-47
3. सम्यक्चारित्राधिकारी	48-52
I अणुव्रताधिकार	53-67
II गुणव्रताधिकार	68-96
III शिक्षाव्रतधिकार	97-122
IV सल्लेखनाधिकार	123-136
V प्रतिमाधिकार	137-151

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगलाचरण

देव अठारह दोष बिन शास्त्र सुगुरु निर्ग्रन्थ ।
और दयामय धर्म को नमूँ मोक्ष का पन्थ ॥१॥

ऋषभ आदि चौबीस जिन तीर्थंकर भगवान ।
ध्याऊँ पूजूँ पद नमूँ करूँ विनय गुणगान ॥२॥

गणधर अंग औ पूर्वधर महा महा आचार्य ।
अविरल श्रुतधारा बहा किया श्रेष्ठतम कार्य ॥३॥

कुन्दकुन्द आम्नाय में शांति वीर शिव ज्ञान ।
दिग्वासस विद्यासुगुरु सूरी आस्थावान ॥४॥

वे मेरे गुरु शिष्य मैं उनका हूँ निर्ग्रन्थ ।
दाता शिक्षा दीक्षा रत्नत्रय शिव पन्थ ॥५॥

समन्तभद्र आचार्य के ग्रन्थ सुरत्न पिटार ।
का अनुवाद सुदोह में करने किया विचार ॥६॥

जिनमत प्रति श्रद्धा जगे तत्त्व ज्ञान विस्तार ।
और आत्महित हेतु गृहि गहें श्रावकाचार ॥८॥

❊

4498
29-7-99

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनाधिकार

मंगलाचरण

श्लोक- नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ।।१।।

वर्धमान जिन श्री नमूँ कर्म-कलंक-विहीन।
झलके विद्यादर्श में लोकालोक अलीन ।।१।।

अन्वयार्थ -

निर्धूतकलिलात्मने	-	जिनकी आत्मा ने कर्मरूप कलंक को नष्ट कर दिया है
यद्विद्या	-	जिनका केवलज्ञान
सालोकानां	-	अलोक सहित
त्रिलोकानाम्	-	तीनों लोकों के विषय में
दर्पणायते	-	दर्पण के समान आचरण करता है
[तस्मै]	-	उन
श्री वर्धमानाय	-	श्री वर्धमान स्वामी को
नमः	-	नमस्कार करता हूँ

भावार्थ - जिनका केवलज्ञान अलोकाकाश सहित तीनों लोकों को दर्पण की तरह स्पष्ट जानता है ऐसे परम वीतरागी श्री वर्धमान स्वामी के लिये नमस्कार हो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा और धर्म का लक्षण

श्लोक- देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम् ।
संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ।।२।।

समीचीन कहूं धर्म जो काटे वसुविध कर्म ।
जगत-दुखों से जीव को काढ़ धरे शिव शर्म ।।२।।

अन्वयार्थ -

[अहम्]	-	मैं
कर्मनिवर्हणम्	-	कर्मों का विनाश करने वाले
[तं]	-	उस
समीचीनं	-	श्रेष्ठ
धर्मं	-	धर्म को
देशयामि	-	कहता हूँ
यः	-	जो
सत्त्वान्	-	जीवों को
संसार दुःखतः	-	संसार के दुःखों से
उद्धृत्य	-	निकालकर
उत्तमे सुखे	-	स्वर्ग-मोक्ष आदि के उत्तम सुख में
धरति	-	धारण करता है, (पहुँचा देता है)

भावार्थ - जो धर्म, जीवों को संसार के दुखों से निकालकर उत्तम सुख में धारण कराता है, मैं (आचार्य समन्तभद्र) उस समीचीन धर्म को यहाँ (इस ग्रन्थ में) कहूँगा ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म और संसार का मार्ग

श्लोक- सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः ॥३॥

सद्दृष्टि सुज्ञानव्रत "धर्म" कहा धर्मेश ।
मिथ्यात्रय संसार-पथ देते अति दुख क्लेश ॥३॥

अन्वयार्थ -

धर्मेश्वराः	-	धर्म के स्वामी
[तानि]	-	उन
सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि	-	सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को
धर्मं	-	धर्म
विदुः	-	जानते हैं
यदीयप्रत्यनीकानि	-	जिनके विपरीत (मिथ्या-दर्शन ज्ञान चारित्र)
भव पद्धतिः	-	संसार के मार्ग
भवन्ति	-	होते हैं

भावार्थ - धर्म के स्वामी जिनेन्द्र देव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म कहा है तथा इसके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र अधर्म हैं जो कि संसार परिभ्रमण के कारण हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन का लक्षण

श्लोक- श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।।४।।

आगम आप्त तपोधनी परमारथ श्रद्धान ।
रहित मूढ़, मद, अंगजुत सम्यग्दर्श सुजान।।४।।

अन्वयार्थ -

परमार्थानाम्	-	परमार्थभूत
आप्त	-	देव
आगम	-	शास्त्र
तपोभृताम्	-	गुरु का
त्रिमूढापोढं	-	तीन मूढ़ताओं से रहित और
अष्ट	-	आठ
अङ्गं	-	अङ्गों सहित
अस्मयम्	-	तथा आठ मद रहित
श्रद्धानं	-	श्रद्धान करना
सम्यग्दर्शनम्	-	सम्यग्दर्शन
[उच्यते]	-	कहा जाता है

भावार्थ - परमार्थभूत सच्चे देव शास्त्र गुरु का आठ अंगों सहित तीन मूढ़ता और आठ मदों से रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म और संसार का मार्ग

श्लोक- सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः ।।३।।

सद्दृष्टि सुज्ञानव्रत "धर्म" कहा धर्मेश ।
मिथ्यात्रय संसार-पथ देते अति दुख क्लेश ।।३।।

अन्वयार्थ -

धर्मेश्वराः	-	धर्म के स्वामी
[तानि]	-	उन
सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि	-	सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को
धर्मं	-	धर्म
विदुः	-	जानते हैं
यदीयप्रत्यनीकानि	-	जिनके विपरीत (मिथ्या-दर्शन ज्ञान चारित्र)
भव पद्धतिः	-	संसार के मार्ग
भवन्ति	-	होते हैं

भावार्थ - धर्म के स्वामी जिनेन्द्र देव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म कहा है तथा इसके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र अधर्म हैं जो कि संसार परिभ्रमण के कारण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन का लक्षण

श्लोक- श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।।४।।

आगम आप्त तपोधनी परमारथ श्रद्धान ।
रहित मूढ़, मद, अंगजुत सम्यग्दर्श सुजान।।४।।

अन्वयार्थ -

परमार्थानाम्	-	परमार्थभूत
आप्त	-	देव
आगम	-	शास्त्र
तपोभृताम्	-	गुरु का
त्रिमूढापोढं	-	तीन मूढ़ताओं से रहित और
अष्ट	-	आठ
अङ्गं	-	अङ्गों सहित
अस्मयम्	-	तथा आठ मद रहित
श्रद्धानं	-	श्रद्धान करना
सम्यग्दर्शनम्	-	सम्यग्दर्शन
[उच्यते]	-	कहा जाता है

भावार्थ - परमार्थभूत सच्चे देव शास्त्र गुरु का आठ अंगों सहित तीन मूढ़ता और आठ मदों से रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप्त का स्वरूप

श्लोक- आप्तेनोत्सन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

दोष रहित, सर्वज्ञ अरु आगमेश हो आप्त ।
इन तीनों बिन अन्यथा नहीं आप्तता प्राप्त ॥५॥

अन्वयार्थ -

नियोगेन	-	नियम से
आप्तेन	-	आप्त को
उत्सन्न दोषेण	-	दोषरहित
सर्वज्ञेन	-	सर्वज्ञ और
आगमेशिना	-	आगम का स्वामी
भवितव्यम्	-	होना चाहिये
हि	-	क्योंकि
अन्यथा	-	अन्य प्रकार से
आप्तता	-	आप्तपना
न	-	नहीं
भवेत्	-	हो सकता

भावार्थ - आप्त के लिये दोषरहित सर्वज्ञ और आगम का स्वामी (कर्त्ता, ईश) होना चाहिये। क्योंकि इसके अलावा अन्य प्रकार से आप्तपना घटित हो ही नहीं सकता ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिन दोषों को आप्त नष्ट करते हैं उनके नाम

श्लोक क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेष मोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।।६।।
क्षुधातृषादिक अष्टदश जिसमें यह ना दोष।
वे ही सच्चे देव हैं नहीं रोष नहीं तोष।।६।।

अन्वयार्थ-

यस्य	-	जिसके
क्षुत्	-	क्षुधा
पिपासा	-	प्यास
जरा	-	बुढ़ापा
आतङ्क	-	रोग
जन्म	-	जन्म
अन्तक	-	मृत्यु
भय	-	डर
स्मयाः	-	मद (गर्व, अहंकार)
राग	-	राग
द्वेष	-	द्वेष
मोहाः	-	मोह
च	-	(और "च" से चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद, और खेद) ये अठारह दोष
न	-	नहीं है
स	-	वह
आप्तः	-	आप्त (सच्चा देव)
प्रकीर्त्यते	-	कहा जाता है

भावार्थ- जिसके भूख, प्यास, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, मद, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद स्वेद और खेद ये अठारह दोष नहीं पाये जाते वही सच्चे आप्त (देव) कहलाते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप्त के विभिन्न नाम

श्लोक- परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वःशास्तोपलाल्यते ।।७।।

विराग परमेष्ठी परम ज्योति विमल कृतकाम ।
शास्त सार्व सर्वज्ञ ये रहे आप्त के नाम ।।७।।

अन्वयार्थ-

स	-	वह
आप्तः	-	आप्त
परमेष्ठी	-	परमेष्ठी
परंज्योतिः	-	परम ज्योति
विरागः	-	विराग
विमलः	-	विमल
कृती	-	कृतकृत्य
सर्वज्ञः	-	सर्वज्ञ
अनादिमध्यान्तः	-	आदि मध्य तथा अन्त से रहित
सार्वः	-	सभी का हित करने वाले
शास्ता	-	हितोपदेशक
उपलाल्यते	-	कहा जाता है

भावार्थ - ऐसे ही आप्त को परमेष्ठी, परंज्योति, वीतराग, विमल, कृति, सर्वज्ञ, अनादिमध्यान्त, सार्व और शास्ता भी कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग के बिना भी आप्त के उपदेश की सिद्धि

श्लोक- अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

स्वार्थ, रागबिन, सर्वहित होता प्रभु उपदेश ।
दे आवाज मृदंग क्या चाहे प्रतिफल लेश ॥८॥

अन्वयार्थ-

शास्ता	-	आप्त भगवान्
रागैर्विना	-	राग के बिना
अनात्मार्थं	-	अपना प्रयोजन न होने पर भी
सतः	-	भव्य जीवों को
हितं	-	हित का
शास्ति	-	उपदेश देते है (क्योंकि)
शिल्पिकरस्पर्शात्	-	बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से
ध्वनन्	-	शब्द करता हुआ
मुरजः	-	मृदंग
किम्	-	क्या
अपेक्षते	-	अपेक्षा रखता है? अर्थात् कुछ भी नहीं

भावार्थ- बजाने वाले शिल्पी के हाथों के स्पर्श से ध्वनि करता हुआ मृदंग जिस प्रकार किसी से कुछ अपेक्षा नहीं रखता उसी प्रकार वह शास्ता भी बिना किसी प्रयोजन या स्वार्थ के सभी को हित का उपदेश देते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्र का स्वरूप

श्लोक- आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट विरोधकम् ।
तत्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ।।९।।

अविरोधी दृष्टेष्ट से आप्तकथित अनुल्लंघ्य ।
तत्त्वदेशना कुपथहत शास्त्र सर्वहित वन्द्य।।९।।

अन्वयार्थ-

तत	-	वह
शास्त्रं	-	शास्त्र
आप्तोपज्ञं	-	सच्चे देव का कहा हुआ
अनुल्लंघ्यम्	-	अनुलङ्घनीय एवं
अदृष्टेष्टविरोधकम्	-	प्रत्यक्ष तथा अनुमानादि के विरोध से रहित है।
तत्व	-	तत्वों का
उपदेशकृत	-	उपदेश करने वाला है
सार्वम्	-	सबका हितकारी है तथा
कापथ	-	मिथ्यामार्ग का
घट्टनम्	-	निराकरण करने वाला है

भावार्थ- जो आप्त के द्वारा कहा हो, अनुल्लंघ्य और अविरोधी हो, तत्वों का उपदेश करता हो तथा सभी प्राणियों का हितकारक हो एवं कुमार्ग का विनाशक हो वही सच्चा शास्त्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु का स्वरूप

श्लोक- विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यान तपोरक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते॥१०॥

विषयाशा के वश नहीं आरंभ-परिग्रह हीन ।
प्रशंसनीय 'साधु' रहा ज्ञान-ध्यान-तप लीन ॥१०॥

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
विषयाशा	-	विषयों की आशा के
वशातीत	-	वश के रहित
निरारम्भः	-	आरम्भ रहित
अपरिग्रहः	-	परिग्रह रहित
ज्ञान ध्यान	-	ज्ञान ध्यान रूपी
तपोरक्तः	-	तप में लीन रहते हैं
सः	-	वह
तपस्वी	-	गुरु
प्रशस्यते	-	प्रशंसनीय हैं

भावार्थ- जो विषयों की आशा के वशीभूत नहीं हैं, आरम्भ तथा परिग्रह से रहित होकर ज्ञान-ध्यान रूप तप में लीन रहते हैं वही निर्ग्रन्थ सच्चे गुरु प्रशंसनीय हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निःशंकित अंग का लक्षण

श्लोक- इदमेवेदृशमेव तत्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽ संशया रुचिः ॥११॥

तत्त्व यही, यूँ ही रहा, अन्य न अन्य प्रकार।
असि अकम्पजल अयसवत् रुचि निशंक गुणसार॥११॥

अन्वयार्थ -

तत्त्वं	-	तत्त्व
इदमेव	-	यही है
ईदृशमेव	-	ऐसा ही है
अन्यत् न	-	अन्य नहीं है
च	-	और
अन्यथा न	-	अन्य प्रकार नहीं है
इति	-	इस तरह
सन्मार्गे	-	देवशास्त्र गुरु के प्रवाह रूप समीचीन मोक्षमार्ग के विषय में
आयसाम्भोवत्	-	लोहे के पानी के समान
अकम्पा	-	निश्चल
रुचिः	-	श्रद्धा
असंशया	-	निःशङ्कितत्त्व गुण
[अस्ति]	-	है

भावार्थ - जिस प्रकार तलवार आदि की धार पर चढ़ा हुआ पानी उसके टुकड़े टुकड़े होने पर भी नहीं हटता उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि की भी मोक्षमार्ग और तत्व के विषय में अकम्प/अविचल श्रद्धा का होना निःशङ्कित अंग है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निःकांक्षित अंग का लक्षण

श्लोक- कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणास्मृता॥१२॥

कर्माश्रित बाधित विषम पापबीज सविराम ।
इन्द्रिय सुख नहिं आस्था अनाकांक्ष गुणधाम ॥१२॥

अन्वयार्थ -

कर्मपरवशे	-	कर्मों के अधीन
सान्ते	-	अन्त से सहित
दुःखै	-	दुखों से
अन्तरितोदये	-	मिश्रित अथवा बाधित (और)
पापबीजे	-	पाप के कारण
सुखे	-	(विषय सम्बन्धी) सुख में
अनास्था	-	अरुचिपूर्ण
श्रद्धानं	-	श्रद्धान को
अनाकांक्षणा	-	निःकांक्षितत्त्व अंग
स्मृता	-	माना गया है

भावार्थ - संसार का सुख कर्म के अधीन है, अन्त सहित है, जिसका उदय दुखों से अन्तरित है अर्थात् सुखकाल के मध्य में भी दुखों का उदय आता रहता है और पाप का बीज है, ऐसे इन्द्रिय जन्य सुख में आकांक्षा नहीं करना निःकांक्षित अंग है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण

श्लोक- स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता ॥१३॥

रत्नत्रय से पूज्य हो अशुचि स्वभावी काय ।
ग्लानि त्याग गुण प्रीतिकर अंग तीसरा पाय ॥१३॥

अन्वयार्थ -

स्वभावतः	-	स्वभाव से
अशुचौ	-	अपवित्र (किन्तु)
रत्नत्रय	-	रत्नत्रय से
पवित्रिते	-	पवित्र
काये	-	शरीर में
निर्जुगुप्सा	-	ग्लानि रहित
गुणप्रीतिः	-	गुणों से प्रेम करना
निर्विचिकित्सता	-	निर्विचिकित्सा अंग
मता	-	माना गया है

भावार्थ - स्वभाव से अपवित्र किन्तु रत्नत्रय के धारण करने से हुये पवित्र धार्मिक पुरुषों के मलिन शरीर को देखकर उसमें ग्लानि नहीं करना तथा उनके गुणों से प्रीति करना निर्विचिकित्सा अंग है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमूढ़दृष्टि अंग का लक्षण

श्लोक - कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढ़ा दृष्टिरुच्यते ।।१४।।

कुत्सित पथ पंथी अहो देते दुख भरपूर।
मनवच काया से सदा रह अमूढ़ दृग दूर।।१४।।

अन्वयार्थ -

[या] दृष्टिः	-	जो दृष्टि
दुःखानां	-	दुःखों के
पथि	-	मार्ग स्वरूप
कापथे	-	मिथ्यादर्शनादिरूपकुमार्ग में
कापथस्थेऽपि	-	कुमार्ग में स्थित जीव में भी
असम्मतिः	-	सम्मति से रहित
असंपृक्तिः	-	संपर्क से रहित
अनुत्कीर्ति	-	प्रशंसा से रहित है वह
अमूढ़ा	-	मूढ़ता रहित
दृष्टिः	-	दृष्टि अर्थात् अमूढ़ दृष्टि अंग
उच्यते	-	कहा जाता है

भावार्थ - मिथ्यामार्ग और मिथ्यामार्गियों के प्रति मनवचन काय से क्रमशः सहमति, प्रशंसा और सेवा से दूर रहना अमूढ़ दृष्टि अंग कहा गया है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपगूहन अंग का लक्षण

श्लोक स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

स्वयं मार्ग निर्मल, तदपि आश्रित बाल असक्त ।
दोष लगे यदि तो ढके उपगूहन अनुरक्त ॥१५॥

अन्वयार्थ -

स्वयं	-	स्वभाव से
शुद्धस्य	-	निर्मल
मार्गस्य	-	रत्नत्रय रूप मार्ग की
बाल	-	अज्ञानी तथा
अशक्त	-	असमर्थ
जनाश्रयाम्	-	मनुष्यों के आश्रय से (होने वाली)
वाच्यतां	-	निन्दा को
यत्	-	जो
प्रमार्जन्ति	-	प्रमार्जित करते हैं
तत्	-	उनके उस प्रमार्जन को
उपगूहनम्	-	उपगूहन अंग
वदन्ति	-	कहते हैं

भावार्थ - स्वयं निर्दोष रत्नत्रयरूप मार्ग की अज्ञानी और असमर्थजनों के आश्रय से होने वाली निन्दा को जो दूर करते हैं उसे ज्ञानीजन उपगूहन अंग कहते हैं ।

❋

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थितिकरण अंग का लक्षण

श्लोक- **दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।**
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥१६॥

विचलित दृग व्रत ज्ञान प्रति रख वृष करुण उमंग।
करे पुनः स्थित वहीं करण स्थिति अंग ॥१६॥

अन्वयार्थ -

धर्मवत्सलैः	-	धर्मस्नेही जनों के द्वारा
दर्शनात्	-	सम्यग्दर्शन से
चरणात्	-	चारित्र से
वा	-	अथवा ज्ञान से
अपि	-	भी
चलतां	-	विचलित होते हुये पुरुषों का
प्रत्यवस्थापनम्	-	फिर से पहले की तरह स्थित किया जाना
प्राज्ञैः	-	विद्वानों के द्वारा
स्थितिकरणम्	-	स्थितिकरण अंग
उच्यते	-	कहा जाता है

भावार्थ - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यक्चारित्र से चलायमान होने वाले लोगों का धर्मवत्सलजनों के द्वारा पुनः उसी में (रत्नत्रय में) स्थित कर देने को स्थितिकरण अंग कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वात्सल्य अंग का लक्षण

श्लोक- स्वयूथ्यानप्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

साधर्मी जन से सरल सद्भावों से प्रीत ।
यथायोग्य आदर विनय वात्सल्य की रीत॥१७॥

अन्वयार्थ -

स्वयूथ्यान्प्रति	-	अपने समूह में रहने वाले लोगों के प्रति
सद्भाव	-	अच्छे भावों से
सनाथा	-	सहित (और)
अपेतकेतवा	-	मायाचार से रहित
यथायोग्यं	-	उनकी योग्यता के अनुसार
प्रतिपत्तिः	-	पूजा, आदर सत्कार आदि करना
वात्सल्यं	-	वात्सल्य अंग
अभिलप्यते	-	कहा जाता है

भावार्थ - अपने साधर्मियों के प्रति सद्भाव सहित यथायोग्य विनय आदर आदि की प्रवृत्ति करना वात्सल्य अंग है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभावना अंग का लक्षण

श्लोक- अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

तिमिर हटा अज्ञान का कर प्रकाश सत्पंथ ।
जिनशासन माहात्म्य से प्रभावना जयवंत ॥१८॥

अन्वयार्थ -

अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्	-	अज्ञान रूपी अन्धकार के विस्तार को
अपाकृत्य	-	दूरकर
यथायथं	-	अपनी शक्ति के अनुसार
जिनशासन	-	जिनशासन के
माहात्म्य प्रकाशः	-	माहात्म्य को प्रकट करना
प्रभावना	-	प्रभावना अंग
स्यात्	-	है

भावार्थ - फैले हुये अज्ञानान्धकार को तप, ज्ञान, पूजा, दानादि उपायों के द्वारा जिनशासन का माहात्म्य प्रकटाना प्रभावना अंग कहलाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगों में प्रसिद्ध पुरुषों के नाम

श्लोक- तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥१६॥

अंजन चोर अनंतमति औ उद्‌दायन भूप ।
तथा रेवती की सुनो फैली कीर्ति अनूप॥१९॥

अन्वयार्थ -

तावत्	- क्रम से
[प्रथमे]	- प्रथम अंग में
अञ्जनचोरः	- अञ्जनचोर
[स्मृतः]	- स्मृत है
ततः	- तदनन्तर द्वितीय अंग में
अनन्तमति	- अनन्तमती
स्मृतः	- स्मृत है
तृतीये अपि अङ्गे	- तृतीय अंग में
उद्दायनः	- उद्‌दायन नाम का राजा
[मतः]	- माना गया है
तुरीये	- चतुर्थ अंग में
रेवती	- रेवती रानी
मता	- मानी गई है

भावार्थ - सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में से प्रथम अंग में अंजन चोर, दूसरे में अनंतमति, तीसरे अंग में उद्दायन राजा और चौथे अंग में रेवती रानी प्रसिद्ध हुई है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगों में प्रसिद्ध पुरुषों के नाम

श्लोक- ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥२०॥

फिर क्रमशः जिनभक्त औ मुनिवर वारिषेण ।
विष्णु, वज्र, दृग अंग में ख्यात हुये दिन रैन ॥२०॥

अन्वयार्थ -

ततः	-	तदनन्तर पंचम अंग में
जिनेन्द्रभक्तः	-	जिनेन्द्रभक्त सेठ
ततःअन्यः	-	उसके बाद पछ अंग में
वारिषेणः	-	वारिषेण राजकुमार
ततःपरः	-	उसके बाद
शेषयोः	-	सप्तम और अष्टम अंग में
विष्णुश्च	-	विष्णु कुमार मुनि और
वज्रनामा च	-	वज्रकुमार मुनि
लक्ष्यतां गतौ	-	प्रसिद्धि को प्राप्त हुये हैं

भावार्थ - पाँचवें अंग में जिनेन्द्रभक्त सेठ, छठे अंग में वारिषेण मुनि, सातवें अंग में विष्णुकुमार मुनि और आठवें अंग में वज्रकुमार मुनि प्रसिद्धि को प्राप्त हुये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगों की उपयोगिता

श्लोक- नांगहीनमलंछेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनां ॥२१॥

अंगहीन दृग ना करे भवसन्तति-विच्छेद ।
अक्षर कम ज्यों मंत्र विष हरे न पीड़ा खेद ॥२१॥

अन्वयार्थ -

अंगहीनं	-	अंगों से हीन
दर्शनं	-	सम्यग्दर्शन
जन्म	-	संसार की
सन्ततिम्	-	संतति को
छेत्तुं	-	छेदने के लिये
अलं	-	समर्थ
न	-	नहीं है
हि	-	क्योंकि
अक्षरन्यूनः	-	एक अक्षर से भी हीन
मन्त्रः	-	मन्त्र
विषवेदनां	-	विष की पीड़ा को
न निहन्ति	-	नष्ट नही करता है

भावार्थ - कम अक्षर वाला मन्त्र जैसे विष की वेदना को दूर करने में समर्थ नहीं रहता ठीक इसी प्रकार अंगहीन सम्यग्दर्शन भी संसार की परम्परा को नष्ट करने में समर्थ नहीं रहता ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकमूढ़ता

श्लोक- आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

धर्म मान कधि' नदि न्हवन गिरि गिर बालू ढेर ।
लोक मूढ़ अग्नि दहन नहीं धर्म से मेर ॥२२॥

अन्वयार्थ -

आपगा	-	नदी और
सागर	-	सागर में
स्नान	-	स्नान करना
सिकता	-	वालू, रेत और
अश्मनां	-	पत्थरों का
उच्चयः	-	ढ़ेर करना (लगाना)
गिरिपातः	-	पर्वत से गिरना
च	-	और
अग्निपातः	-	अग्नि में पड़ना (जलना)
लोकमूढं	-	लोकमूढ़ता
निगद्यते	-	कही जाती है

भावार्थ - धर्म बुद्धि से नदी और समुद्र में स्नान करना, बालू और पत्थरों का ऊँचा ढ़ेर लगाना, पर्वत से गिरना, अग्नि में प्रवेश करना तथा और भी इसी तरह की अविवेक पूर्ण क्रियायें लोकमूढ़ता कही गई है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवमूढ़ता

श्लोक- वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ।।२३।।

राग - द्वेष से मलिन जो उन देवों की भक्ति।
वर वांछा या आशवश देवमूढ़ अभिव्यक्ति ।।२३।।

अन्वयार्थ -

वरोपलिप्सया	-	वरदान प्राप्त करने की इच्छा से
आशावान्	-	आशा से युक्त हो
राग द्वेष	-	राग द्वेष से
मलीमसाः	-	मलिन
देवताः	-	देवों की
यत्	-	जो
उपासीत	-	आराधना (भक्ति) की जाती है
[तत्]	-	वह
देवतामूढं	-	देवमूढ़ता
उच्यते	-	कही जाती है

भावार्थ - आशा-तृष्णा के वशीभूत होकर वर पाने की इच्छा से राग-द्वेष से मलिन देवी-देवताओं की जो उपासना, आराधना, भक्ति की जाती है, वह देवमूढ़ता कहलाती है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु मूढ़ता

श्लोक- सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम्॥२४॥

परिग्रह हिंसारंभयुत कुगुरु भ्रमें संसार ।
इनकी सेवा विनय है साधुमूढ़ दुखकार॥२४॥

अन्वयार्थ -

सग्रन्थारम्भहिंसानां	-	परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित तथा
संसारावर्तवर्तिनाम्	-	संसार भ्रमण के कारणभूत कार्यों में लीन
पाषाण्डिनां	-	अन्य कुलिङ्गियों को
पुरस्कारः	-	अग्रेसर करना
पाषाण्डिमोहन्	-	पाषण्डि (गुरु) मूढ़ता
ज्ञेयं	-	जानने के योग्य है

भावार्थ - परिग्रह आरंभ और हिंसा से युक्त संसार भ्रमण के कारणभूत कार्यों में लीन अन्य कुलिङ्गि साधुओं का आदर सत्कार, भक्ति पूजा आदि करना गुरु मूढ़ता मानी गई है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आठ मद के नाम

श्लोक - ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ।।२५।।

ज्ञान ऋद्धि बल जाति कुल पूजा तन तप गर्व।
जो करते वह 'मद' रहा कहते मदजित सर्व ।।२५।।

अन्वयार्थ -

ज्ञानं	-	ज्ञान
पूजां	-	पूजा
कुलं	-	कुल
जातिं	-	जाति
बलं	-	बल
ऋद्धिं	-	ऋद्धि
तपः	-	तप और
वपुः	-	शरीर इन
अष्टौ	-	आठ का
आश्रित्य	-	आश्रय लेकर
मानित्वं	-	गर्वित होने को
गतस्मयाः	-	गर्व से रहित गणधरादिकदेव
स्मयं	-	गर्व या मद
आहुः	-	कहते हैं

भावार्थ - ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठ बातों का आश्रय करके जो अभिमान किया जाता है वह गर्व कहलाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मद करने से हानि

श्लोक- स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ।।२६।।

अहंकारवश जो करे धार्मिक जन अपमान ।
धर्म नहीं धर्मी बिना करता निज वृष हान ।।२६।।

अन्वयार्थ -

स्मयेन	-	मद से
गर्विताशयः	-	गर्वितचित्त होता हुआ
यः	-	जो पुरुष
धर्मस्थान्	-	रत्नत्रय रूप धर्म में स्थित
अन्यान्	-	अन्य जीवों को
अत्येति	-	अपमानित (तिरस्कृत) करता है,
सः	-	वह
आत्मीयं	-	अपने
धर्मं	-	धर्म को (ही)
अत्येति	-	तिरस्कृत करता है क्योंकि
धार्मिकैः	-	धर्मात्माओं के
बिना	-	बिना
धर्मः	-	धर्म
न	-	नहीं होता

भावार्थ - अभिमान चित्तवाला जो पुरुष मद से अन्य धर्मात्मा जनों का तिरस्कार करता है वह अपने ही रत्नत्रय रूप धर्म का तिरस्कार करता है क्योंकि धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रह सकता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मद जीतने का उपाय

श्लोक- **यदि पापनिरोधोऽन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ।**
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

पाप निरोधक धर्म यदि, तो धन का क्या काम ।
औ आश्रव यदि पाप का, तो धन का क्या काम॥२७॥

अन्वयार्थ -

यदि	-	यदि
पाप	-	पाप को
निरोधः	-	रोकने वाला (रत्नत्रय) धर्म है
[अस्ति]	-	है
[तर्हि]	-	तो
अन्यसम्पदा	-	अन्य सम्पत्ति से
किं	-	क्या
प्रयोजनम्	-	प्रयोजन है और
अथ	-	यदि
पाप	-	पाप का
आस्रव	-	आस्रव (मिथ्यात्व अविरति आदि)
अस्ति	-	है
[तर्हि]	-	तो
अन्यसम्पदा	-	अन्य (दूसरी) सम्पत्ति से
किं	-	क्या
प्रयोजनम्	-	प्रयोजन है ?

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि विचारता है कि यदि पाप का आस्रव रुक रहा है, तो मुझे अन्य सम्पदा से क्या प्रयोजन है ? और यदि पाप का आस्रव हो रहा है तो भी मुझे अन्य सम्पदा से क्या प्रयोजन है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन की महिमा

श्लोक- सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥

दृगधारी मातंग भी पाय देव सत्कार ।
निम्नकुली पर ध्यान रख भस्म चढ़ा अंगार॥२८॥

अन्वयार्थ -

देवाः	-	गणधरादिक देव,
मातङ्ग	-	चाण्ड़ाल
देहजम्	-	कुल में उत्पन्न हुये
अपि	-	भी
सम्यग्दर्शन	-	सम्यग्दर्शन से
सम्पन्नं	-	युक्त जीव को
भस्म	-	भस्म (राख) से
गूढ़	-	आच्छादित
अङ्गार	-	अङ्गार के
अन्तर	-	भीतरी भाग के समान
औजसम्	-	तेज से युक्त
देवं	-	आदरणीय सम्मानीय
विदुः	-	जानते हैं

भावार्थ - भस्म से आच्छादित किन्तु अन्तरंग में देदीप्यमान उस अंगार की तरह चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन से युक्त वह व्यक्ति भी आदरणीय/ सम्माननीय माना जाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-अधर्म का फल

श्लोक - **श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।**
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ।।२६।।

पाप, धर्म फलवश बने देव श्वान श्वा देव।
अन्य कौन सम्पद् बढ़ी धर्म बिना नहीं छेव ।।२९।।

अन्वयार्थ -

धर्म	-	धर्म और
किल्विषात्	-	पाप से क्रमशः
श्वाऽपि	-	कुत्ता भी
देवः	-	देव और
देवोऽपि	-	देव भी
श्वा	-	कुत्ता
जायते	-	हो जाता है (वास्तव में)
धर्मात्	-	धर्म से
शरीरिणाम्	-	प्राणियों को
कापि नाम अन्या	-	कोई अनिर्वचनीय (वचनों के अगोचर)
सम्पत्	-	सम्पत्ति (प्राप्त)
भवेत्	-	होती है

भावार्थ - धर्म के प्रभाव से कुत्ता भी देव हो जाता है और पाप के उदय से देव भी कुत्ता बन जाता है अतः इस संसार में प्राणियों को धर्म से बड़ी अन्य कोई सम्पत्ति नहीं है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमस्कार न करे

श्लोक- भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्ध दृष्टयः॥३०॥

नेह लोभ भय आश से शुचि दृढ़ श्रद्धावान ।
नमन विनय करता नहीं कुगुरु देव कुज्ञान॥३०॥

अन्वयार्थ -

शुद्ध	-	निर्मल
दृष्टयः	-	सम्यग्दृष्टि जीव
भय	-	भय
आशा	-	आशा
स्नेह	-	स्नेह
लोभात् च	-	और लोभ से भी
कुदेव	-	मिथ्या देव
आगम	-	मिथ्या शास्त्र और
कुलिङ्गिनाम्	-	कुगुरु को
प्रणामं	-	नमस्कार
च	-	और
विनयं	-	विनय भी
न	-	नहीं
कुर्युः	-	करे

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव भय आशा स्नेह और लोभ के वशीभूत होकर कुदेव कुशास्त्र और कुगुरुओं की विनय वन्दना नहीं करता है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता

श्लोक- दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

ज्यों खेवटिया के बिना पार न हो जलयान ।
त्यों ही मारग मोक्ष में दर्शन रहा प्रधान॥३१॥

अन्वयार्थ -

[यत्]	-	जिस कारण से
दर्शनं	-	सम्यग्दर्शन,
ज्ञानचारित्रात्	-	ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा
साधिमानं	-	श्रेष्ठता या उत्कृष्टता को
उपाश्नुते	-	प्राप्त होता है
तत्	-	उस कारण से
दर्शनं	-	सम्यग्दर्शन को
मोक्षमार्गे	-	मोक्षमार्ग के विषय में
कर्णधारं	-	खेवटिया
प्रचक्षते	-	कहते हैं

भावार्थ - सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि मोक्षमार्ग में उसे खेवटिया की उपमा दी गई है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असंभवता

श्लोक- विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव॥३२॥

ज्ञान चरण उत्पत्ति औ वृद्धि स्थिति फल दक्ष।
नहिं होवे सम्यक्त्व बिन, ज्यों बिन बीज न वृक्ष॥३२॥

अन्वयार्थ -

बीजाभावे	-	बीज के अभाव में
तरोःइव	-	वृक्ष की तरह
सम्यक्त्वे	-	सम्यक्त्व के
असति	-	न होने पर
विद्यावृत्तस्य	-	ज्ञान और चारित्र की
संभूति	-	उत्पत्ति
स्थिति	-	स्थिति
वृद्धि	-	वृद्धि
फलोदयाः	-	और फल की उद्‌भूति
न सन्ति	-	नहीं होती है

भावार्थ - जैसे बीज के अभाव में वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति असंभव है उसी प्रकार सम्यक्त्व के अभाव में ज्ञान और चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ

**श्लोक - गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥**

मोही मुनि से श्रेष्ठ है गृहि यदि मोहातीत।
मोक्षमार्ग थित गृहि रहा मुनी रहा विपरीत॥३३॥

अन्वयार्थ -

निर्मोहः	-	मोह (मिथ्यात्व) से रहित
गृहस्थः	-	गृहस्थ
मोक्षमार्गस्थः	-	मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु
मोहवान्	-	मोह - (मिथ्यात्व) से सहित
अनगारः	-	मुनि
नैव	-	मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है
मोहिनः	-	मोही - (मिथ्यादृष्टि)
मुनेः	-	मुनि की अपेक्षा
निर्मोहः	-	मोहरहित - (सम्यग्दृष्टि)
गृही	-	गृहस्थ
श्रेयान्	-	श्रेष्ठ
[अस्ति]	-	है

भावार्थ - मोह (मिथ्यात्व) से रहित गृहस्थ, मोक्षमार्ग में फिर भी स्थित है किन्तु मोह (मिथ्यात्व) से सहित मुनि, मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है । इसलिये मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ कहा गया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेय और अश्रेय का कथन

श्लोक - न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व समं नान्यत्तनूभृताम् ।।३४।।

दर्शन सम कुछ भी नहीं हितु त्रिकाल जगमांहि ।
और रहा मिथ्यात्व सम जीव अहितकर नांहि ।।३४।।

अन्वयार्थ -

तनूभृताम्	-	संसारी प्राणियों के लिये
त्रैकाल्ये	-	तीनों कालों और
त्रिजगत्यपि	-	तीनों लोकों में भी
सम्यक्त्वसमं	-	सम्यग्दर्शन के समान
श्रेयः	-	कल्याणरूप
च	-	और
मिथ्यात्व समं	-	मिथ्यादर्शन के समान
अश्रेयः	-	अकल्याणरूप
अन्यत्	-	अन्य वस्तु
न	-	नहीं है

भावार्थ - संसारी प्राणियों के लिये तीनों कालों और तीनों लोकों में सम्यग्दर्शन के समान कल्याणकारी अन्य कोई वस्तु नहीं है और मिथ्यादर्शन के समान अहितकारी अन्य कोई वस्तु नहीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि जीव क्या क्या नहीं होता

श्लोक- सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः।।३५।।

षंढ नारी नारक पशु दुष्कुल विकल स्वहीन ।
अल्प आयु उपजे नहीं अव्रत दृग अमलीन।।३५।।

अन्वयार्थ -

सम्यग्दर्शनशुद्धाः	-	सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव
अव्रतिका अपि	-	व्रत रहित होने पर भी
नारक	-	नारकी
तिर्यङ्	-	तिर्यञ्च
नपुंसक	-	नपुंसक और
स्त्रीत्वानि	-	स्त्री पर्याय को
च	-	तथा
दुष्कुल	-	नीचकुल
विकृत	-	विकलांग अवस्था
अल्पायुः	-	अल्पायु और
दरिद्रता	-	दरिद्रता को
न व्रजन्ति	-	प्राप्त नहीं होते

भावार्थ - सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव, व्रत रहित होने पर भी नारकी, तिर्यञ्च, नपुंसक और स्त्रीपर्याय को प्राप्त नहीं होते तथा नीचकुल, विकलांग, अल्पायु और दरिद्रता को भी प्राप्त नहीं होते।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं

श्लोक- ओजस्तेजोविद्यावीर्य्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
माहाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

ओज तेज विद्या विभव वीर्य विजय यशवृद्धि ।
पूत दृष्टि कुल नरतिलक पाता अर्थ प्रसिद्धि ॥३६॥

अन्वयार्थ -

दर्शनपूताः	-	सम्यग्दर्शन से पवित्र
ओजः	-	उत्साह
तेजः	-	प्रताप
विद्या	-	विद्या
वीर्य	-	पराक्रम
यशः	-	यश
वृद्धि	-	वृद्धि
विजय	-	विजय और
विभवसनाथाः	-	वैभव से सहित
माहाकुलाः	-	उच्च कुलोत्पन्न
महार्थाः	-	पुरुषार्थ से सहित तथा
मानवतिलकाः	-	मनुष्यों में श्रेष्ठ
भवन्ति	-	होते हैं

भावार्थ - सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव यदि मनुष्यों में उत्पन्न होता है तो ओज, तेज, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, विजय और वैभव से युक्त महानपुरुषार्थी मानवतिलक होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि जीव, श्रेष्ठ देव होते हैं

श्लोक- **अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्ट शोभाजुष्टाः ।**
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे।।३७।।

अष्ट ऋद्धि शोभा सहित अमर अप्सरा भोग ।
रमता दिवि चिरकाल तक पा जिन भक्ति सुयोग।।३७।।

अन्वयार्थ -

दृष्टिविशिष्टाः	-	सम्यग्दर्शन से सहित
जिनेन्द्रभक्ताः	-	जिनेन्द्र भगवान् के भक्त पुरुष
स्वर्गे	-	स्वर्ग में
अमराप्सरसां	-	देव-देवियों की
परिषदि	-	सभा में
अष्टगुण	-	अणिमाआदि आठ गुणों की
पुष्टितुष्टाः	-	पुष्टि से सन्तुष्ट और
प्रकृष्ट	-	बहुत भारी
शोभाजुष्टाः	-	शोभा से सहित होते हुये
चिरं	-	चिरकाल तक
रमन्ते	-	क्रीड़ा करते हैं

भावर्थ - जिनेन्द्र-भक्त सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं तो अणिमा-महिमा आदि आठ ऋद्धि रूप गुणों की प्राप्ति से सदा प्रमुदित और उत्कृष्ट शोभा से युक्त देवों और अप्सराओं की सभा में चिरकाल तक आनन्द का उपभोग करते हैं ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि जीव, चक्रवर्ती होते हैं

श्लोक- नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्त्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

नवनिधि चौदह रत्नपति पदनत भूप प्रचंड ।
विशद दृष्टि पा चक्रबल वर्ते भू षट् खंड ॥३८॥

अन्वयार्थ -

स्पष्टदृशः - निर्मल सम्यग्दर्शन के धारक मनुष्य ही
नवनिधि - नौ निधियों और
सप्तद्वयरत्न - चौदह रत्नों के
आधीशाः - स्वामी तथा
क्षत्रमौलिशेखर - राजाओं के मुकुटों सम्बन्धी कलगियों पर
चरणाः - जिनके चरण हैं ऐसे
सर्वभूमिपतयः - सर्व भूमि के स्वामी
चक्रं - चक्ररत्न को
वर्त्तयितुं - वर्तानि के लिये
प्रभवन्ति - समर्थ होते हैं

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव क्षत्रिय राजाओं से पूज्य नवनिधि और चौदह रत्नों के साथ-साथ षट्खण्ड भूमि के अधिपति होते हैं तथा चक्ररत्न के स्वामी होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंकर होते हैं

श्लोक- अमरासुर नरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः ।
दृष्टया सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः॥३९॥

अमर, असुर, नर, यति-पती चरण कमल गुण गाँय ।
सम्यक्त्वी वृष चक्रधर तीर्थंकर पद पाय॥३९॥

अन्वयार्थ -

दृष्टया	-	सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से
(जीवाः)	-	जीव
अमरासुरनरपतिभिः	-	देवेन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तियों
च	-	तथा
यमधरपतिभिः	-	मुनियों के स्वामी गणधरों के द्वारा
नूतपादाम्भोजाः	-	जिनके चरण कमलों की स्तुति की जाती है
सुनिश्चितार्थाः	-	जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है तथा जो
लोकशरण्याः	-	लोगों को शरण देनें में निपुण हैं ऐसे
वृषचक्रधराः	-	धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर
भवन्ति	-	होते हैं

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव देवेन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती तथा गणधरों से पूज्यनीय तीन लोक के शरणभूत धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर भी होते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि जीव शिव पद भी पाते हैं

श्लोक- **शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम् ।**
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

परमोत्तम अनुभूत सुख विमल विभव विज्ञान ।
अजर अमर बाधादि बिन मुक्ति पाय दृगवान् ॥४०॥

अन्वयार्थ -

दर्शनशरणाः	-	सम्यग्दृष्टि जीव
अजरं	-	वृद्धावस्था से रहित
अरुजं	-	रोग से रहित
अक्षयं	-	क्षय से रहित
अव्याबाधं	-	बाधाओं से रहित
विशोकभयशङ्कम्	-	शोकभय और शंका से रहित
काष्ठागत	-	सर्वोत्कृष्ट
सुख वियाविभवं	-	सुख और ज्ञान के वैभव से सहित तथा
विमलं	-	द्रव्यकर्म और भावकर्मरूप मल से रहित
शिवं	-	मोक्ष को
भजन्ति	-	प्राप्त होते हैं

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव, अजर, अरुज, अक्षय, अव्याबाध, शोक, भय और शंका से रहित, चरम सीमा को प्राप्त सुख और ज्ञान के वैभव वाले ऐसे शिव पद को भी प्राप्त करते हैं ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन की महिमा का उपसंहार

श्लोक- देवेन्द्र चक्रमहिमानममेयमानम्
राजेन्द्र चक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्र चक्रमधरीकृत सर्वलोकम्
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ।।४१।।

देव भूप धर्मेन्द्र बन पाय विभव सन्मान ।
दृष्टिवान जिन भक्त वह अन्त पाय निर्वाण ।।४१।।

अन्वयार्थ -

जिनभक्तिः	-	जिनेन्द्र भगवान् का भक्त
भव्यः	-	सम्यग्दृष्टि पुरुष
अमेयमानं	-	अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित
देवेन्द्रचक्रमहिमानं	-	इन्द्रसमूह की महिमा को
अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयं	-	मुकुटबद्ध राजाओं के मस्तकों से पूज्यनीय
राजेन्द्रचक्रं	-	चक्रवर्ती के चक्ररत्न को
च	-	और
अधरीकृतसर्वलोकं	-	समस्त लोकों को नीचा करने वाले
धर्मेन्द्रचक्रं	-	तीर्थंकर के धर्म चक्र को
लब्ध्वा	-	प्राप्त कर
शिवं	-	मोक्ष को
उपैति	-	प्राप्त होता है

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव क्रमशः इन्द्रपद, चक्रवर्ती पद और तीर्थंकर पद को प्राप्त करता हुआ अन्त में मुक्ति पद को भी पाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानाधिकार

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

श्लोक - अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

हीनाधिक विपरीत बिन निःसन्देह मतिमान ।
जाने तत्त्व यथार्थ जो देव कहें सज्ज्ञान ॥४२॥

अन्वयार्थ -

यत्	-	जो पदार्थ को
अन्यूनं	-	न्यूनता रहित
अनतिरिक्तं	-	अधिकता रहित
याथातथ्यं	-	ज्यों का त्यों
विपरीतात्	-	विपरीतता से
विना	-	रहित
च	-	और
निःसन्देहं	-	सन्देह रहित
वेद	-	जानता है
तत्	-	उसे
आगमिनः	-	आगम के ज्ञाता पुरुष
ज्ञानं	-	सम्यग्ज्ञान
आहुः	-	कहते हैं

भावार्थ - हीनाधिकता से रहित सन्देह और विपरीतता से रहित वस्तु स्वरूप के यथार्थ जानने का नाम सम्यग्ज्ञान है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमानुयोग का लक्षण

श्लोक- प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ।।४३।।

परम अर्थ पोषक चरित जिनमें पुरुष पुराण ।
वही प्रथम अनुयोग सत् बोधि समाधि निधान ।।४३।।

अन्वयार्थ -

समीचीनः बोधः	-	सम्यक् श्रुतज्ञान
अर्थाख्यानं	-	परमार्थ विषय का कथन करने वाले
चरितं	-	एक पुरुषाश्रित कथा
अपि	-	और
पुराणं	-	त्रेसठ शलाका पुरुष सम्बन्धी कथा रूप
पुण्यं	-	पुण्यवर्धक तथा
बोधि समाधि	-	बोधि और समाधि के
निधानं	-	निधान
प्रथमानुयोगं	-	प्रथमानुयोग को
बोधति	-	जानता है

भावार्थ - पुण्यवर्धक चरित और पुराणों को तथा धर्मवर्द्धक बोधि-समाधि का कथन करने वाले शास्त्रों को प्रथमानुयोग कहते हैं । यह प्रथमानुयोग बोधि-समाधि का निधान (भण्डार) कहा गया है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करणानुयोग का लक्षण

श्लोक- लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

युगावर्त गति लोक का भौगोलिक व्याख्यान ।
दिखलाता दर्पण सदृश करण शास्त्र श्रुतवान॥४४॥

अन्वयार्थ -

तथा	-	प्रथमानुयोग की तरह
मतिः	-	मनन रूप श्रुतज्ञान
लोकालोकविभक्तेः	-	लोक और अलोक के विभाग
युगपरिवृत्तेः	-	युगों के परिवर्तन
च	-	और
चतुर्गतीनां	-	चारों गतियों के लिये
आदर्शमिव	-	दर्पण के समान
करणानुयोगं च	-	करणानुयोग को भी
अवैति	-	जानता है

भावार्थ - लोक और अलोक के विभाग को, काल के परिवर्तन को और चारों गतियों के वर्णन को जो ज्ञान दर्पण की तरह जैसा का तैसा जानता है उसे करणानुयोग कहते हैं।

4498 29-7-99

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरणानुयोग का लक्षण

श्लोक- गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम् ।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

जनन वृद्धि रक्षा करे मुनि श्रावक चारित्र।
रहे चरण अनुयोग के समझो ग्रंथ पवित्र ॥४५॥

अन्वयार्थ -

सम्यग्ज्ञानं	-	भावश्रुतरूप सम्यग्ज्ञान
गृहमेध्यनगाराणां	-	गृहस्थ और मुनियों के
चारित्रोत्पत्ति	-	चारित्र की उत्पत्ति
वृद्धि	-	विकास और
रक्षाङ्गम्	-	रक्षा के कारणभूत
चरणानुयोग	-	चरणानुयोग
समयं	-	शास्त्र को
विजानाति	-	जानता है

भावार्थ - जिस शास्त्र में गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का वर्णन मिलता है उसे चरणानुयोग कहते हैं ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यानुयोग का लक्षण

श्लोक- जीवाजीवसुतत्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

जीवाजीवाश्रव तथा तत्व मोक्ष औ बन्ध।
दीप, द्रव्य अनुयोग का फैलाता श्रुत गन्ध ॥४६॥

अन्वयार्थ -

द्रव्यानुयोगदीपः	-	द्रव्यानुयोग रूपी दीपक
जीवाजीवसुतत्वे	-	जीव, अजीव प्रमुख तत्त्वों को
पुण्यापुण्ये च	-	पुण्य और पाप को
बन्धमोक्षौ	-	बन्ध और मोक्ष को तथा
च	-	"च" से आस्रव संवर निर्जरा को
श्रुतविद्यालोकं	-	भाव श्रुतज्ञान रूप प्रकाश को फैलाता हुआ
आतनुते	-	विस्तृत करता है

भावार्थ - जो शास्त्र जीव और अजीव को, पुण्य-पाप को तथा बन्ध मोक्षादि तत्त्वों को दीपक की तरह प्रकाशित करने वाला होता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्राधिकार

चारित्र धारण कौन करता है

श्लोक- मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

मोह तिमिर के छटन से पा दृग ज्ञान प्रकाश।
गहें भव्य चारित्र फिर राग-द्वेष परिनाश ॥४७॥

अन्वयार्थ -

मोहतिमिरापहरणे	-	मोहरूपी अन्धकार के दूर होने पर
दर्शनलाभात्	-	सम्यग्यदर्शन की प्राप्ति से
अवाप्तसंज्ञानः	-	जिसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसा
साधुः	-	भव्य जीव, सज्जन पुरुष
रागद्वेषनिवृत्त्यै	-	रागद्वेष की निवृत्ति के लिये
चरणं	-	चारित्र को
प्रतिपद्यते	-	प्राप्त होता है (स्वीकार करता है)

भावार्थ- बादल के हट जाने पर जिस प्रकार उजास और प्रकाश एक साथ प्रगट होते हैं उसी प्रकार मिथ्यात्व के जाते ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रकट होते हैं। इनके प्रगट होते ही भव्य जीव फिर रागद्वेष की निवृत्ति के लिये चारित्र को अंगीकार करता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागद्वेष की निवृत्ति से चारित्रोत्पत्ति

श्लोक- **रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तनाकृता भवति ।**
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन।।४८।।

रागद्वेष निवृति निमित कर हिंसादिक त्याग ।
बिना प्रयोजन कौन नर भूप सेव में लाग ।।४८।।

अन्वयार्थ-

रागद्वेषनिवृत्ते :	-	राग-द्वेष की निवृत्ति होने से
हिंसादिनिवर्त्तना	-	हिंसादि पापों से निवृत्ति
कृताभवति	-	स्वयमेव हो जाती है क्योंकि
अनपेक्षितार्थवृत्तिः	-	जिसे किसी प्रयोजन रूप फल की प्राप्ति अभिलषित नहीं है ऐसा
कः पुरुषः	-	कौन पुरुष
नृपतीन् सेवते	-	राजाओं की सेवा करता है ?

भावार्थ - राग-द्वेष की निवृत्ति होने से हिंसादि पापों की निवृत्ति स्वयं हो ज़ाती है क्योंकि ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो बिना किसी अपेक्षा के राजाओं की सेवा करता हो।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक् चारित्र का लक्षण

श्लोक- हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्॥४६॥

हिंसानृत चोरी तथा मैथुन परिग्रह अत्र ।
पाप आगमन द्वार ये विरती नाम चरित्र ॥४९॥

अन्वयार्थ-

संज्ञस्य	-	सम्यग्ज्ञानी जीव का
पापप्रणालिकाभ्यः	-	पाप के पनाले स्वरूप
हिंसानृतचौर्य्येभ्यः	-	हिंसा, झूठ, चोरी
च	-	और
मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां	-	कुशील तथा परिग्रह से
विरतिः	-	निवृत्ति होना
चारित्रम्	-	चारित्र
[कथ्यते]	-	कहा जाता है

भावार्थ- पाप आगमन के द्वार रूप हिंसादिक पांच पापों का परित्याग करना सम्यक् चारित्र कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र के विकल और सकल भेद

श्लोक- सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् ॥५०॥

सकल विकल दो चरण हैं पूर्ण विरत औ देश।
क्रमशः मुनि श्रावक रहे जिनवर का उपदेश ॥५०॥

अन्वयार्थ -

तत्	-	वह
चरणं	-	चारित्र
सकलं विकलं	-	सकल और विकल भेद वाला है जिसमें
सकलं	-	सम्पूर्ण चारित्र
सर्वसंगविरतानाम्	-	समस्त परिग्रहों से रहित
अनगाराणां	-	मुनियों के और
विकलं	-	एकदेश चारित्र
ससंगानां	-	परिग्रह युक्त
सागाराणाम्	-	गृहस्थों के
(भवति)	-	होता है

भावार्थ- सकल और विकल के भेद से चारित्र दो प्रकार का है जिसमें सकल चारित्र मुनियों के होता है एवं विकल चारित्र श्रावकों का माना गया है

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल चारित्र के भेद

श्लोक - गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥५१॥

अणु गुण शिक्षा रूप से गृही त्रिधा आचार।
पन त्रय चउ क्रमशः मिला द्वादश हुये प्रकार॥५१॥

अन्वयार्थ-

गृहिणां	- गृहस्थों का
चरणं	- विकल चारित्र
अणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं	- अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप
त्रेधा	- तीन प्रकार का
तिष्ठति	- है और
त्रयं	- तीनों ही
यथासंख्यं	- पांच, तीन और चार भेद वाले
आख्यातं	- कहे गये हैं

भावार्थ- वह विकल चारित्र अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप है तथा क्रमशः पांच, तीन और चार भेद वाला है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुव्रताधिकार

अणुव्रत का लक्षण

श्लोक- प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति॥५२॥

जो विरक्ति स्थूलतः हिंसादिक पन पाप।
है अणुव्रत, जो मेटता भव-भव का संताप॥५२॥

अन्वयार्थ-

प्राणातिपात	-	हिंसा
वितथव्याहार	-	झूठ
स्तेय	-	चोरी
काम	-	कुशील और
मूर्च्छाभ्यः	-	मूर्च्छा (परिग्रह) इन
स्थूलेभ्यः	-	स्थूल
पापेभ्यः	-	पापों से
व्युपरमणं	-	विरत होना
अणुव्रत	-	अणुव्रत
भवति	-	है

भावार्थ - जिसमें पाचों पापों का त्याग स्थूल रूप से अर्थात् एकदेश किया जाता है उसे अणुव्रत कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसाणुव्रत का लक्षण

श्लोक- सङ्कल्यात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः॥५३॥

नवकोटी संकल्प से करे न जो त्रसघात ।
अहिंसाणुव्रत वह रहा कहते जन निष्णात ॥५३॥

अन्वयार्थ-

यत्	-	जो
योगत्रयस्य	-	तीनों योगों के
कृतकारितानुमननात्	-	कृतकारित अनुमोदनारूप
सङ्कल्पात्	-	संकल्प से
चरसत्त्वान्	-	त्रसजीवों को
न हिनस्ति	-	नहीं मारता है
तत्	-	उसे
निपुणाः	-	हिंसादित्यागरूपव्रत के विचार करने में समर्थ मनुष्य
स्थूलवधाद्	-	स्थूलहिंसा का
विरमणं	-	त्याग अर्थात् अहिंसाणुव्रत
आहुः	-	कहते हैं

भावार्थ - मन वचन काय और कृतकारित अनुमोदना रूप नवविध संकल्प से जो त्रस जीवों का घात नहीं करता है वह अहिंसाणुव्रत है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

श्लोक- छेदनबन्धनपीड़नमतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च॥५४॥

छेद बंध पीड़ा तथा अधिक लादना भार ।
अन्नपान अवरोधना पहले व्रत अतिचार॥५४॥

अन्वयार्थ-

स्थूलवधात्	-	स्थूल वध से
व्युपरतेः	-	विरत के (अहिंसाणुव्रत के)
छेदन	-	छेदना
बन्धन	-	बांधना
पीड़नम्	-	पीड़ा देना
अतिभारारोपणम्	-	अधिक भार लादना
अपि च	-	और
आहारवारणा	-	आहार का रोकना, निषेध करना ये
पञ्च	-	पांच
व्यतीचाराः	-	अतिचार
(सन्ति)	-	है

भावार्थ - पशु-पक्षी आदि जीवों के अंगों का छेद करना, रस्सी आदि से बांधना, डंडे आदि से पीटना, शक्ति से अधिक भार लादना और उनके आहार पानी को रोक देना, ये पांच अहिंसाणुव्रत के अतिचार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्याणुव्रत का लक्षण

श्लोक- स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूल मृषावाद वैरमणम्॥५५॥

मोटी झूठ न बोलना बोलन करे न बाध्य ।
विपद सत्य भी ना कहे अणुव्रत सत्य कहाय ॥५५॥

अन्वयार्थ-

यत्	-	जो
स्थूलं	-	स्थूल
अलीकं	-	झूठ को
न वदति	-	न स्वयं बोलता है
न परान् वादयति	-	न दूसरों से बुलवाता है
सत्यमपि	-	और ऐसा सत्य भी
विपदे	-	जो दूसरे के प्राणघात के लिये हो
तत्	-	उसे
सन्तः	-	सत्पुरुष
स्थूलमृषावादवैरमणं	-	स्थूल झूठ का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत
वदन्ति	-	कहते हैं

भावार्थ - जो लोक विरुद्ध, राज्य विरुद्ध एवं धर्म विघातक स्थूल झूठ को न स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है तथा ऐसा सत्य भी नहीं बोलता जो दूसरों को विपत्ति में डालने में कारण बने वह सत्याणुव्रत कहलाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्याणुव्रत के अतिचार

श्लोक- परिवादरहोभ्याख्यापैशुन्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाःपञ्च सत्यस्य ।।५६।।

रहस प्रगट परिवाद औ कूटलेख पैशून्य ।
रखा द्रव्य अपहारना दोष थूल सच जन्य ।।५६।।

अन्वयार्थ-

परिवाद	-	मिथ्या उपदेश
रहोभ्याख्या	-	रहोभ्याख्यान
पैशुन्यं	-	पैशुन्य
कूटलेखकरणं च	-	कूटलेख लिखना
अपि च	-	और भी
न्यासापहारिता	-	दूसरों की धरोहर को हड़पने वाले वचन कहना
[ऐते]	-	ये
पञ्च	-	पांच
सत्यस्य	-	सत्याणुव्रत के
व्यतिक्रमाः	-	अतिचार
[सन्ति]	-	है

भावार्थ - मिथ्या उपदेश देना, किसी के द्वारा की गई गुप्त क्रियाओं को प्रकट कर देना, चुगली करना, नकली लेख आदि लिखना और दूसरों की धरोहर को हड़प जाना यह पांच सत्याणुव्रत के अतिचार हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अचौर्याणुव्रत का लक्षण

श्लोक - निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृश चौर्य्यादुपारमणम् ।।५७।।

रखा गिरा भूला हुआ बिना दिया जो द्रव्य।
स्वयं न ले, दे अन्य न, अचौर्याणुव्रति भव्य ।।५७।।

अन्वयार्थ-

निहितं वा	-	रखे हुए
पतितं वा	-	गिरे हुये अथवा
सुविस्मृतं वा	-	बिल्कुल भूले हुए
अविसृष्टं	-	बिना दिये हुये (छोड़े हुए)
परस्वं	-	दूसरे के धन को
न हरति	-	न स्वयं लेता है
च (अन्यस्मै)	-	और किसी दूसरे को
न दत्ते	-	नहीं देता है
तत्	-	वह
अकृशचौर्यात्	-	स्थूल चोरी का
उपारमणम्	-	परित्याग अर्थात् अचौर्याणुव्रत है

भावार्थ- दूसरे की रखी हुई, गिरी हुई, अथवा भूली हुई वस्तु को और बिना दिये हुये धन को जो न स्वयं लेताहै और न उठाकर दूसरों को देता है, उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

श्लोक- चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः॥५८॥

चोर प्रेरणा चौर्यधंन लेना औ सममिश्र ।
नाप तौल छोटे बड़े लोप दोषव्रत तिस्र ॥५८॥

अन्वयार्थ-

चौरप्रयोग	-	चोरी के लिए प्रेरित करना
चौरार्थादान	-	चोरी का धन लेना
विलोप	-	कानून तोड़ना
सदृशसन्मिश्राः	-	सदृशसन्मिश्र और
हीनाधिकविनिमानं	-	हीनाधिक विनिमान
[एते]	-	ये
पञ्च	-	पांच
अस्तेये	-	अचौर्याणुव्रत के
व्यतीपाताः	-	अतिचार
[सन्ति]	-	है

भावार्थ - किसी को चोरी के लिये भेजना, चोरी की वस्तु को लेना, राज्य के नियमों का उल्लंघन करना, बहुमूल्य वस्तु में समान रूप वाली अल्प कीमत की वस्तु मिलाकर बेचना और लेने देने में कम अधिक नाप तौल करना, यह पांच अचौर्याणुव्रत के अतिचार है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण

श्लोक- न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥५९॥

पाप भीरु पर नारी में रमें न पर रमवाय !
स्वदार सन्तोषी व्रती निवृत्ति पाता जाय ॥५९॥

अन्वयार्थ-

यत्	- जो
पापभीतेः	- पाप के भय से
परदारान्	- परस्त्रियों के प्रति
न तु गच्छति	- न स्वयं गमन करता है
च	- और
न परान्	- न दूसरों को
गमयति	- गमन कराता है
सा	- वह
परदारनिवृत्तिः	- परस्त्री त्याग अथवा
स्वदारसन्तोषनामापि	- स्वदार संतोष नाम का अणुव्रत है

भावार्थ - जो पाप के भय से पराई स्त्रियों के पास न तो स्वयं जाता है और न ही दूसरों को भेजता है, वह परदार निवृत्ति अथवा स्वदार सन्तोष नाम का ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

श्लोक- अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीड़ाविटत्वविपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः॥६०॥

पर विवाह इत्वरिगमन और काम अतिभाव ।
क्रीडानंग विटत्व तज निज व्रत ब्रह्म बचाव॥६०॥

अन्वयार्थ-

अन्यविवाहाकरण	-	अन्यविवाहाकरण
अनङ्गक्रीड़ा	-	अनङ्गक्रीड़ा
विटत्व	-	विटत्व
विपुलतृषः	-	विपुलतृषा
च	-	और
इत्वरिकागमनं	-	इत्वरिकागमन
[एते]	-	ये
पञ्च	-	पाँच
अस्मरस्य	-	ब्रह्मचर्याणुव्रत के
व्यतीचाराः	-	अतिचार
[सन्ति]	-	है

भावार्थ - दूसरों का विवाह कराना, काम-सेवन के अंगों के सिवाय अन्य अंगों से काम-सेवन करना, अशिष्ट वचनों का प्रयोग करते हुए शरीर की चेष्टा करना तथा काम-सेवन की अधिक इच्छा रखना और व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहां आना-जाना यह ब्रह्मचर्याणुव्रत के पांच अतिचार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रह परिमाणव्रत का लक्षण

श्लोक - **धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता ।**
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥

धन धान्यादिक संग की सीमा, अधिक उदास ।
परिमित परिग्रह व्रत रहा इच्छा का कर ह्रास ॥६१॥

अन्वयार्थ-:

धनधान्यादिग्रन्थं	-	धन-धान्यादि परिग्रह का
परिमाय	-	परिमाणकर
ततः	-	उससे
अधिकेषु	-	अधिक में
निस्पृहता	-	इच्छारहित होना
परिमितपरिग्रहः	-	परिमित परिग्रह अथवा
इच्छापरिमाणनामापि	-	इच्छापरिमाण नाम का अणुव्रत
स्यात्	-	होता है

भावार्थ - धन-धान्यादि परिग्रह का परिमाण करके उससे अधिक में निःस्पृहता रखना परिग्रह परिमाण व्रत है इसी का दूसरा नाम इच्छापरिमाण व्रत भी है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रह परिमाणव्रत के अतिचार

श्लोक- **अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि ।**
परिमित परिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते।।६२।।

अतिवाहन संग्रह अधिक और वहन अतिभार।
विस्मय अधिक प्रलोभ ये पंचम व्रत अतिचार ।।६२।

अन्वयार्थ-

अतिवाहनातिसंग्रह	-	अतिवाहन, अतिसंग्रह
विस्मयलोभ	-	अति विस्मय, अतिलोभ और
अतिभारवहनानि	-	अतिभारवाहन
[एते]	-	ये
पञ्च	-	पांच
परिमितपरिग्रहस्य च	-	परिग्रहपरिमाणव्रत के
विक्षेपाः	-	अतिचार
लक्ष्यन्ते	-	निश्चित किये जाते हैं

भावार्थ- आवश्यकता से अधिक वाहनों को रखना, अधिक वस्तुओं का संग्रह करना, दूसरों के लाभादि को देखकर आश्चर्य करना, अधिक लोभ करना और घोड़े आदि को उनकी शक्ति से अधिक जोतना, उनपर अधिक बोझा लादना यह पांच, परिग्रह परिमाण व्रत के अतिचार है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुव्रत धारण का फल

श्लोक - पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अणुव्रत निर्दोषी फलें स्वर्ग सुवैभव रूप ।
दिव्य देह वसु ऋद्धियां अवधिज्ञान सुख कूप॥६३॥

अन्वयार्थ -

निरतिक्रमणाः	-	अतिचार रहित
पञ्च	-	पाँच
अणुव्रतनिधयः	-	अणुव्रत रूपी निधियाँ
(तं)	-	उस
सुरलोकं	-	स्वर्ग लोक को
फलन्ति	-	फलती है
यत्र	-	जिसमें
अवधिः	-	अवधिज्ञान
अष्टगुणाः	-	अणिमा महिमा आदि आठगुण
च	-	और
दिव्यशरीरं	-	सात धातुओं से रहित वैक्रियिक शरीर
लभ्यन्ते	-	प्राप्त होते हैं

भावार्थ - अतिचार रहित पांच अणुव्रतों का पालन करने वाला जीव अपनी आयु पूर्ण होने पर मरकर, स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। जहां उसे अवधिज्ञान अणिमा आदि अष्ट ऋद्धियां और सप्तधातुरहित सुन्दर वैक्रियिक शरीर प्राप्त होता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुव्रत धारियों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम

श्लोक- मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः ।
नीली जयश्च संप्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम्।।६४।।

है मतंग धनदेव श्री वारिषेण सुकुमार ।
नीली जय ने प्राप्त की पूजा अतिशयसार।।६४।।

अन्वयार्थ-

मातङ्ग	-	यमपाल नाम का चाण्ड़ाल
धनदेवः	-	धनदेव
ततः परः	-	उसके बाद
वारिषेणः	-	वारिषेण नाम का राजकुमार
नीली	-	नीली
च	-	और
जयः	-	जयकुमार ये क्रम से अहिंसादि अणुव्रतों में
उत्तमं	-	उत्तम
पूजातिशयं	-	पूजा के अतिशय को
संप्राप्ताः	-	प्राप्त हुए हैं

भावार्थ - कहे गये पांच अणुव्रतों में क्रमशः यमपाल चाण्ड़ाल, धनदेवसेठ, राजकुमार वारिषेण, नीली नाम की बालिका और जयकुमार अतिशय रूप प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पांच पापों में प्रसिद्ध व्यक्ति

श्लोक- धनश्री सत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥

सत्यघोष धनश्री तथा तापस औ कुतवाल ।
श्मश्रुनवनीत के ख्यात पाप के जाल ॥६५॥

अन्वयार्थ-

धनश्री	-	धनश्री
सत्यघोषौ च	-	और सत्य घोष
तापसा	-	तापस
रक्षकौ अपि	-	और कुतवाल
तथा	-	और
श्मश्रु नवनीतः	-	श्मश्रु नवनीत ये पाँच
यथाक्रमं	-	क्रम से हिंसादि पापों में
उपाख्येयाः	-	दृष्टान्त देने के योग्य हैं

भावार्थ- इसी तरह हिंसादि पांच पापों में क्रमशः धनश्री सेठानी, सत्यघोष पुरोहित, अपसर नामक तापस, यमदण्ड कोतवाल और श्मश्रुनवनीत (लुब्धदत्त नामक वैश्य) प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृहस्थ के आठ मूलगुण

श्लोक- मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ।।६६।।

मद्य मांस मधु त्याग जो पंचाणुव्रत साथ ।
अष्ट मूलगुण है कहे गृहिजन के मुनिनाथ ।।६६।।

अन्वयार्थ-

श्रमणोत्तमाः	-	मुनियों में उत्तम गणधरादिक देव
मद्यमांसमधुत्यागै	-	मद्य मांस और मधु त्याग के साथ
अणुव्रतपञ्चकम्	-	पांच अणुव्रतों को
गृहिणाम्	-	गृहस्थों के
अष्टौ	-	आठ
मूलगुणान्	-	मूलगुण
आहुः	-	कहते है

भावार्थ - मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ पांच अणुव्रतों के धारण करने को उत्तम मुनियों ने गृहस्थों के आठ मूलगुण कहे हैं।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणव्रतों के नाम

श्लोक- दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अनुवृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

दिग्व्रत अनरथ दण्डव्रत भोगुपभोग प्रमाण ।
वृद्धि मूलगुण हेतु ये गुणव्रत आर्य बखान ॥६७॥

अन्वयार्थ-

आर्याः	-	तीर्थंकरदेव आदि उत्तम पुरुष
गुणानां	-	मूलगुणों की
अनुवृंहणात्	-	वृद्धि करने के कारण
दिग्व्रतं	-	दिग्व्रत
अनर्थदण्डव्रतं	-	अनर्थदण्डव्रत
च	-	और
भोगोपभोगपरिमाणं	-	भोगोपभोग परिमाण व्रत को
गुणव्रतानि	-	गुणव्रत
आख्यान्ति	-	कहते हैं

भावार्थ - दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत यह तीनों उपर्युक्त आठ मूलगुणों में गुण, वृद्धि या दृढ़ता करते हैं अतः इन्हें आर्यपुरुष गुणव्रत कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्व्रत का लक्षण

श्लोक - दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्नयास्यामि ।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै॥६८॥

सूक्ष्म पाप निवृति निमित बांध दशो दिशि सीम।
आमृति प्रण बहि गमन ना दिग्व्रत सुखद असीम ॥६८॥

अन्वयार्थ-

आमृति	-	मरणपर्यन्त
अणुपापविनिवृत्त्यै	-	सूक्ष्मपापों की निवृत्ति के लिये
दिग्वलयं	-	दिशाओं के समूह को
परिगणितं	-	मर्यादा सहित
कृत्वा	-	करके
अहं	-	मैं
अतः	-	इससे
बहिः	-	बाहर
न यास्यामि	-	नहीं जाऊंगा
इति संकल्पः	-	ऐसा संकल्प करना
दिग्व्रतम्	-	दिग्व्रत
भवति	-	होता है

भावार्थ- सूक्ष्म पापों से भी बचने के लिये दशों दिशाओं में आवागमन की मर्यादा करके उससे बाहर जीवन पर्यन्त नहीं जाना दिग्व्रत कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्व्रत की मर्यादा का प्रकार

श्लोक - मकराकरसरिदटवीगिरि जनपदयोजनानि मर्य्यादाः ।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

सागर नदि अटवी तथा योजन पर्वत देश ।
मर्यादा दश दिशि करे प्रसिद्ध यह व्यपदेश ॥६९॥

अन्वयार्थ-

दशानां दिशाम्	-	दशों दिशाओं के
प्रतिसंहारे	-	परिगणित करने में
प्रसिद्धानि	-	प्रसिद्ध
मकराकर	-	समुद्र
सरित	-	नदी
अटवी	-	अटवी
गिरि	-	पर्वत
जनपद	-	देश
योजनानि	-	और योजना को
मर्यादा	-	मर्यादा
प्राहुः	-	कहते हैं

भावार्थ- दशों दिशाओं के प्रतिसंहार अर्थात् दिग्व्रत के ग्रहण में प्रसिद्ध समुद्र, नदी, पर्वत, नगर और योजन आदि पर्यन्त आवागमन की मर्यादा की जाती है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्व्रत की मर्यादा के बाहर अणुव्रतों के महाव्रतपना

श्लोक- **अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।**
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

सूक्ष्म पाप से बच रहा दिग्व्रति सीमा पार।
परिणत अणुव्रत इसलिए महाव्रतन आकार ॥७०॥

अन्वयार्थ-

दिग्व्रतानि	-	दिग्व्रतों को
धारयताम्	-	धारण करने वाले पुरुषों के
अणुव्रतानि	-	अणुव्रत
अवधेः	-	की हुई मर्यादा के
बहिः	-	बाहर
अणुपापप्रतिविरतेः	-	सूक्ष्म पापों की भी निवृत्ति हो जाने से
पञ्चमहाव्रतपरिणतिं	-	पांच महाव्रत रूप परिणति को
प्रपद्यन्ते	-	प्राप्त हो जाते हैं

भावार्थ - दिग्व्रत की मर्यादा के बाहर दिग्व्रती के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के पापों की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। अतः वहां की अपेक्षा उसके अणुव्रत भी महाव्रत जैसे हो जाते हैं। (यह कथन उपचार कथन है, किन्तु परमार्थतः प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने के कारण वहां अणुव्रत ही हैं)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपचार की दृष्टि से महाव्रत

श्लोक- प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ।।७१।।

तनुतर प्रत्याख्यान से चरण मोह अति मंद ।
कठिन सत्व निर्धारना कल्पित महव्रत नन्द।।७१।।

अन्वयार्थ-

प्रत्याख्यानतनुत्वात्	- प्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ का मन्द उदय होने से
मन्दतराः	- अत्यन्त मन्द अवस्था को प्राप्त हुए (यहां तक कि)
सत्त्वेन्दुरवधाराः	- जिनके अस्तित्व का निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे
चरणमोहपरिणामाः	- चारित्र मोह के परिणाम
महाव्रताय	- महाव्रत के व्यवहार के लिये
प्रकल्प्यन्ते	- उपचरित होते हैं - कल्पना किये जाते हैं

भावार्थ- प्रत्याख्यानावरण कषाय के कृश होने से अत्यन्त मन्दता को प्राप्त हुए चारित्र मोह के परिणाम जिनकी सत्ता का निश्चय करना भी कठिन है, महाव्रत के लिये कल्पित किये जाते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाव्रत का लक्षण

श्लोक- पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ।।७२।।

हिंसादिक पन पाप का नव प्रकार से त्याग।
रहे महाव्रत साधु के करें भविक अनुराग।।७२।।

अन्वयार्थ-

हिंसादीनां	-	हिंसाआदिक
पञ्चानां	-	पांच
पापानां	-	पापों का
मनोवचः कायैः	-	मन वचन काय से
(तथा)	-	और
कृतकारितानुमोदैः	-	कृतकारित अनुमोदना से
त्यागः	-	त्याग करना
महतां	-	महापुरुषों का
महाव्रतं	-	महाव्रत
भवति	-	होता है

भावार्थ- मन वचन काय तथा कृत कारित अनुमोदना के गुणित रूप नव कोटि संकल्पों से हिंसा आदिक पांच पापों का सर्वथा त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्व्रत के अतिचार

श्लोक - ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशः पञ्च मन्यन्ते ।।७३।।

ऊर्ध्व अधः तिर्यक दिशा सीमा करना पार।
क्षेत्रवृद्धि सीमा विसर दिग्व्रत के अतिचार ।।७३।।

अन्वयार्थ-

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः	-	ऊपर नीचे और समान धरातल की सीमा का उल्लंघन करना
क्षेत्रवृद्धिः	-	क्षेत्र का बढ़ा लेना और
अवधीनां	-	की हुई सीमाओं का
विस्मरणं	-	भूल जाना
इति	-	ये
पञ्च	-	पांच
दिग्विरतेः	-	दिग्विरति व्रत के
अत्याशाः	-	अतिचार
मन्यन्ते	-	माने जाते हैं

भावार्थ - अज्ञान अथवा प्रमाद से ऊर्ध्वदिशा की मर्यादा का उल्लंघन करना, अधोदिशा की मर्यादा का उल्लंघन करना, पूर्वादि तिर्यग्दिशाओं का उल्लंघन करना, मर्यादित क्षेत्र की वृद्धि कर लेना और मर्यादा को भूल जाना, यह पांचों दिग्व्रत के अतिचार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनर्थदण्ड व्रत का लक्षण

श्लोक - अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थकेभ्यः सपापयोगेभ्यः ।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥

बिना प्रयोजन अवधि में पापयोगयुत कार्य ।
कहते अनरथ दण्डव्रत इनसे बचने आर्य ॥७४॥

अन्वयार्थ-

व्रतधराग्रण्यः	-	व्रतधारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थंकर देवादि
दिगवधेः	-	दिग्व्रत की सीमा के भीतर
अपार्थकेभ्यः	-	प्रयोजन रहित
सपापयोगेभ्यः	-	पाप सहित योगों से
विरमणं	-	निवृत्त होने को
अनर्थदण्डव्रतं	-	अनर्थदण्ड्व्रत
विदुः	-	जानते हैं

भावार्थ - दिग्व्रत में की हुई मर्यादा के भीतर जिनसे धर्म, सुख, लाभ आदि कुछ भी नहीं होता ऐसी पापबन्ध की कारण मन, वचन, काय की प्रवृत्ति से विरक्त होना अनर्थदण्ड विरति व्रत कहलाता है। इनमें मनवचन काय रूप योग की निष्प्रयोजन अशुभ प्रवृत्ति होती है इसलिये इन्हें अनर्थदण्ड कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनर्थदण्ड के भेद

श्लोक- पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च ।
प्राहुः प्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

पापुपदेश प्रमादक्रिय दुश्रुति हिंसादान ।
अपध्यान मिल पंच ये हैं अनर्थ दण्डान्॥७५॥

अन्वयार्थ-

अदण्डधराः	-	गणधरदेवादिक
पापोपदेश	-	पापोपदेश
हिंसादान	-	हिंसादान
अपध्यान	-	अपध्यान
दुःश्रुतीः	-	दुःश्रुति और
प्रमादचर्य्याम्	-	प्रमादचर्या
पञ्च	-	इन पांच को
अनर्थदण्डान्	-	अनर्थदण्ड
प्राहुः	-	कहते हैं

भावार्थ - पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या यह पांच भेद वाले अनर्थदण्ड हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापोपदेश अनर्थदण्ड का लक्षण

श्लोक- **तिर्य्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।**
कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः॥७६॥

हिंसारम्भ प्रलम्भना वाणिज तिर्यक् क्लेश ।
पाप जनक पुनि-पुनि कथा करना पापुपदेश ॥७६॥

अन्वयार्थ-

तिर्य्यक्क्लेश	- पशुओं को क्लेश पहुंचाने वाली क्रियायें
वणिज्या	- व्यापार
हिंसा	- हिंसा
आरम्भ	- आरम्भ तथा
प्रलम्भनादीनाम्	- ठगई आदि की
कथाप्रसङ्गः प्रसवः	- कथाओं के प्रसङ्ग उत्पन्न करना
पापउपदेशः	- पापोपदेश नाम का अनर्थदण्ड
स्मर्त्तव्यः	- स्मरण करने के योग्य है

भावार्थ - तिर्यग्व्यापार, क्लेशव्यापार, हिंसा, आरम्भ और छल आदि में प्रवर्तक कथाओं का बार-बार प्रसङ्ग उठाना (चर्चा वार्तादि करना) पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंसादान अनर्थदण्ड का लक्षण

श्लोक- **परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुध शृङ्गिशृंखलादीनाम्।**
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

आयुध अग्नि कुदाल विष असि आदिक का दान ।
वध हेतु हैं अतः बुध कहते हिंसादान ॥७७॥

अन्वयार्थ-

बुधाः	-	गणधरदेवादिक विज्ञपुरुष
परशु	-	फरसा
कृपाण	-	तलवार
खनित्र	-	कुदाली
ज्वलन	-	अग्नि
आयुध	-	शस्त्र
शृङ्गि	-	विष तथा
शृंखलादीनाम्	-	सांकल आदि
वधहेतूनां दानं	-	हिंसा के कारणों के दान को
हिंसादानं	-	हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड
ब्रुवन्ति	-	कहते हैं

भावार्थ - हिंसा के कारणभूत फरसा, तलवार, कुदाली, अग्नि, अस्त्र-शस्त्र, विष और सांकल आदि के देने को हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपध्यान अनर्थदण्ड का लक्षण

श्लोक- **वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।**
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः।।७८।।

वध बन्धादिक द्वेष से रतिवश पर धन नार ।
खोटा चिन्तन जो करे अपध्यान दुखकार ।।७८।।

अन्वयार्थ-

जिनशासनेविशदाः	-	जिनशासन में निपुण पुरुष
द्वेषात्	-	द्वेष के कारण किसी के
वधबन्धच्छेदादेः	-	वध बन्धन और छेद आदि का तथा
रागात्	-	राग के कारण
परकलत्रादेः	-	परस्त्री आदि का
आध्यानं	-	चिन्तन करने को
अपध्यानं	-	अपध्यान (खोटा चिन्तन)
शासति	-	कहते हैं

भावार्थ - द्वेष भाव से किसी प्राणी के बध, बन्ध और छेदनादि का चिन्तवन करना तथा राग से परस्त्री तथा धन आदि का चिन्तवन करना अपध्यान नाम का अनर्थदण्ड कहलाता है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःश्रुति अनर्थदण्ड का लक्षण

श्लोक- आरम्भसङ्ग साहस मिथ्यात्वद्वेषराग मदमदनैः ।
चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७६॥

रागद्वेष हिंसादि मद काम कथा रस लीन ।
शास्त्र श्रवण दुःश्रुति रहा करता चित्त मलीन ॥७९॥

अन्वयार्थ-

आरम्भ	-	आरम्भ
सङ्ग	-	परिग्रह
साहस	-	साहस
मिथ्यात्व	-	मिथ्यात्व
द्वेष	-	द्वेष
राग	-	राग
मद	-	अहंकार और
मदनैः	-	काम के द्वारा
चेतः	-	चित्त को
कलुषयताम्	-	कलुषित करने वाले
अवधीनां	-	शास्त्रों का
श्रुति	-	सुनना
दुःश्रुतिः	-	दुःश्रुति नाम का अनर्थदण्ड
भवति	-	है

भावार्थ - आरम्भ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, मद और विषयभोग से चित्त को मलिन करने वाले शास्त्रों का सुनना दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का लक्षण

श्लोक - **क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं।**
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

आरंभ सलिलानल अनिल इला इलारुह छेद ।
निष्प्रयोज सारण सरण प्रमादचर्या वेद ॥८०॥

अन्वयार्थ-

क्षिति	-	पृथ्वी
सलिल	-	पानी
दहन	-	अग्नि और
पवन	-	वायु का
आरंभ	-	आरंभ करना
वनस्पतिच्छेदं	-	वनस्पति का छेदना
सरणं	-	स्वयं घूमना
च	-	और
सारणंअपि	-	दूसरों को घुमाना भी (इस सबको)
प्रमादचर्यां	-	प्रमादचर्या नाम का अनर्थदण्ड
प्रभाषन्ते	-	कहते हैं

भावार्थ - बिना प्रयोजन के जमीन खोदने, जल बहाने, अग्नि जलाने, हवा करने, वनस्पति तोड़ने, घूमने और घुमाने को प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

श्लोक - कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः॥८१॥

प्रसाधनाति कन्दर्प औ कौत्कुच्य मौखर्य ।
दोष सु अनरथ त्याग के बिन विचार कर कार्य॥८१॥

अन्वयार्थ-

कन्दर्पं	-	राग की तीव्रता से हास्य-परिहास में भद्देवचन बोलना
कौत्कुच्यं	-	शरीर की कुचेष्टा करना
मौखर्यं	-	वकवाद करना
अतिप्रसाधनं	-	भोगोपभोग की सामग्री का अधिक संग्रह करना
च	-	और
असमीक्ष्य	-	प्रयोजन का विचार किये बिना ही
अधिकरणं	-	किसी कार्य का अधिक आरंभ करना
[एते]	-	ये
पञ्च	-	पाँच
अनर्थदण्डकृद्विरतेः	-	अनर्थदण्डविरतिव्रत के
व्यतीतयः	-	अतिचार
[सन्ति]	-	हैं

भावार्थ - राग बहुलता से हंसी करते हुए अशिष्ट वचन कहना, काय की कुचेष्टा करना, व्यर्थ बकवाद करना, आवश्यकता से अधिक भोग-उपभोग की वस्तुओं का संग्रह करना और बिना सोचे विचारे कार्य करना ये पांच अनर्थदण्डव्रत के अतिचार हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतका लक्षण

श्लोक- **अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।**
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

आवश्यक विषयाक्ष का अवधि मांहि परिमाण ।
राग-भाव कृश करन को भोगुपभोग प्रमाण ॥८२॥

अन्वयार्थ-

अवधौ	-	विषयों के परिमाण के भीतर
रागरतीनां	-	विषय सम्बन्धी राग से होने वाली आसक्ति को
तनूकृतये	-	कृश करने के लिये
अर्थवतामपि	-	प्रयोजनभूत भी
अक्षार्थानां	-	इन्द्रिय विषयों का
परिसंख्यानं	-	परिगणन करना (सीमानिर्धारित करना)
भोगोपभोगपरिमाणम्	-	भोगोपभोग परिमाण नाम का गुणव्रत
[अस्ति]	-	है

भावार्थ- परिग्रहपरिमाण व्रत में ली हुई मर्यादा के भीतर भी राग और आसक्ति को घटाने के लिये प्रयोजनीय इन्द्रिय विषयों की संख्या के सीमित करने को भोगोपभोग परिमाणव्रत कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोग और उपभोग का लक्षण

श्लोक- भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसन प्रभृतिः पाञ्चेन्द्रियो विषयः॥८३॥

अशन वसन आदिक विषै एक भुक्त है भोग ।
बार-बार है भोग्य जो समझो वह उपभोग ॥८३॥

अन्वयार्थ-

अशनवसन प्रभृतिः	-	भोजन और वस्त्र को आदि लेकर
पाञ्चेन्द्रियः	-	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी जो
विषयः	-	विषय
भुक्त्वा	-	भोगकर
परिहातव्यः	-	छोड़ देने के योग्य है वह
भोगः	-	भोग है
च	-	और जो
भुक्त्वा	-	भोगकर
पुनः भोक्तव्यः	-	फिर से भोगने योग्य है वह
उपभोगः	-	उपभोग
(अस्ति)	-	है

भावार्थ- जो पदार्थ बार-बार भोगने में आता है वह उपभोग कहलाता है जैसे वस्त्र आभूषण वगैरह और जो एक बार भोगने के बाद फिर भोगने योग्य नहीं रहता वह भोग कहलाता है जैसे भोजन, गंध माला वगैरह।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मद्य मांस और मुध त्याग के निर्देश

श्लोक- त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ।।८४।।

प्रमादवर्धक मद्य औ त्रसघातक मधु मांस ।
दयावान तजता इन्हें जो जिनेन्द्र का दास ।।८४।।

अन्वयार्थ-

जिनचरणौ	-	जिनेन्द्र भगवान के चरणों की
शरणम्	-	शरण को
उपयातै	-	प्राप्त हुये पुरुषों के द्वारा
त्रसहतिपरिहरणार्थं	-	त्रसजीवों की हिंसा का परिहार करने के लिये
क्षौद्रं	-	मधु
पिशितं	-	मांस
च	-	और
प्रमादपरिहृतये	-	प्रमाद का परिहार करने के लिये
मद्यं	-	मदिरा
वर्जनीयं	-	छोड़ने के योग्य है

भावार्थ - मधु और मांस के खाने से त्रस जीवों की हिंसा होती है और मदिरा पीने से त्रसहिंसा तथा मोह की उत्पत्ति होती है। अतः जिनेन्द्र भगवान की शरण को प्राप्त दयालुपुरुष के लिये इन तीनों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभक्ष्य त्याग का निर्देश

श्लोक- अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि श्रृंगवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥

अदरक मूली केतकी निम्ब कुसुम नवनीत।
बहुविघात फल अल्प है अतः तजो हे! मीत॥८५॥

अन्वयार्थ-

अल्पफलबहुविघातात्	-	अल्पफल और बहुत त्रसजीवों का विघात होने से
मूलकं	-	मूली, जड़
आर्द्राणि	-	गीला
श्रृंङ्गवेराणि	-	अदरक
नवनीतनिम्बकुसुमं	-	मक्खन, नीम के फूल और
कैतकं	-	केवड़ा के फूल तथा
इति एवं	-	इसीप्रकार के अन्य पदार्थ भी श्रवकों के द्वारा
अवहेयम्	-	छोड़ने योग्य हैं

भावार्थ - जिनके खाने में लाभ अल्प हो किन्तु त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा अधिक हो ऐसे मूली, कन्द, गीला अदरक, मक्खन, नीम के फूल, केतकी के फूल तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ पंच उदुम्बर फल आदि का सेवन छोड़ देना चाहिये।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्याज्य वस्तुओं का निर्देश एवं व्रत का लक्षण

श्लोक- यदनिष्टं तदूव्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति॥८६॥

आनुपसेव्य अनिष्ट तो स्वयं रहे हैं त्याज ।
विषय विरत अभिप्राय से समझो व्रत का राज ॥८६॥

अन्वयार्थ-

यत्	-	जो वस्तु
अनिष्टं	-	अहितकर हो
तद्	-	उसे
व्रतयेत्	-	छोड़े
च	-	और
यत्	-	जो
अनुपसेव्यं	-	सेवन करने योग्य नहीं हो
एतदपि	-	वह भी
जह्यात्	-	छोड़े (क्योंकि)
योग्यात्	-	योग्य
विषयात्	-	विषय से
अभिसन्धिकृता	-	अभिप्रायपूर्वक की हुई
विरतिः	-	निवृत्ति
व्रतं	-	व्रत
भवति	-	होती है

भावार्थ - शारीरिक दृष्टि से अनिष्ट तथा कुलीन पुरुषों के सेवन के अयोग्य वस्तुओं का त्याग तो करना ही चाहिये किन्तु सेवन करने योग्य विषय-वस्तु का अभिप्राय पूर्वक त्याग करना ही व्रत कहलाता है।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियम और यम का लक्षण

श्लोक- **नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात् ।**
नियमः परिमित कालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ।।८७।।

भोगुपभोग प्रमाण में है यम नियम विधान।
सीमितकालावधि 'नियम' आजीवन 'यम' जान।।८७।।

अन्वयार्थ-

भोगोपभोगसंहारात्	-	भोग और उपभोग के परिमाण का आश्रयकर
नियमः	-	नियम
च	-	और
यमः	-	यम
द्वेधा	-	दो प्रकार से
विहितौ	-	प्रतिपादित हैं (उनमें)
परिमितकालः	-	जो काल के परिमाण से सहित है वह
नियमः	-	नियम है और जो
यावज्जीवं	-	जीवन पर्यन्त के लिये
ध्रियते	-	धारण किया जाता है वह
यमः	-	यम कहलाता है

भावार्थ - भोगोपभोग परिमाण व्रत में नियम और यम रूप दो प्रकार से त्याग का विधान किया गया है। सीमित काल के लिये किया गया त्याग नियम तथा जीवनपर्यंत के लिये किया गया त्याग यम कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगोपभोग की सामग्री

श्लोक- भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु ।
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेषु ॥८८॥

अशन वसन वाहन सुमन न्हवन पान तन लेप।
मदन गीत संगीतआभूषण सेज विशेष ॥८८॥

अन्वयार्थ -

भोजन	-	भोजन
वाहन	-	सवारी
शयन	-	शय्या
स्नान	-	स्नान
पवित्राङ्गराग	-	पवित्र अङ्ग विलेपन और
कुसुमेषु	-	पुष्पों में
ताम्बूल	-	पान
वसन	-	वस्त्र
भूषण	-	आभूषण
मन्मथ	-	कामसेवन
संगीत	-	संगीत और
गीतेषु	-	गीत के विषय में

भावार्थ - भोगोपभोग परिमाण व्रत में भोजन, सवारी, शय्या, स्नान, सुगन्ध, पुष्प, पान, वस्त्र, आभूषण, गीत, संगीत आदि भोगोपभोग की सामग्री के विषय में -

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियम करने की विधि

श्लोक- अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्त्तुरयनं वा।
इति काल परिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८६॥

एक दिवस इक रात वा पक्ष माह दो माह।
अयन आदि सीमा लिये त्याग नियम की राह॥८९॥

अन्वयार्थ -

अद्य	-	आज
दिवा	-	दिन
रजनी	-	रात
वा	-	अथवा
पक्षः	-	एक पक्ष
मासः	-	एक माह
तथा	-	और
ऋतुः	-	एक ऋतु (दो माह)
वा	-	अथवा
अयनं	-	एक अयन (छह माह)
इति	-	इस प्रकार
कालपरिच्छित्त्या	-	समय के विभाग पूर्वक
प्रत्याख्यानं	-	त्याग करना
नियमः	-	नियम
भवेत्	-	होता है

भावार्थ - (पूर्व कथित भोगोपभोग सामग्री का) घड़ी, प्रहर, एक दिन, एक रात अथवा पक्ष, माह, छह माह आदि तक के लिये त्याग करना नियम कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतिचार

श्लोक - **विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवौ।**
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

विष सम विषयन के प्रती अनुस्मृति अनुपेक्ष।
तृषासक्त अतिलौल्य ये गुणव्रतान्त विक्षेप ॥९०॥

अन्वयार्थ-

विषयविषतः	-	विषय रूपी विष से
अनुपेक्षा	-	उपेक्षा नहीं होना अर्थात् उसमें आदर रखना
अनुस्मृतिः	-	भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना
अतिलौल्यं	-	वर्तमान विषयों में अधिक लम्पटता रखना
अतितृषानुभवौ	-	आगामी विषयों की अधिक तृष्णा रखना और वर्तमान विषयों का अत्यन्त आसक्ति से अनुभव करना
(एते) पञ्च	-	ये पांच
भोगोपभोगपरिमा	-	भोगोपभोग परिमाण व्रत के
व्यतिक्रमाः	-	अतिचार
कथ्यन्ते	-	कहे जाते हैं

भावार्थ - इन्द्रिय के विषय सेवन में आसक्ति बनी रहना, पूर्व में भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना, वर्तमान विषयों में अति लोलुपता रखना, भविष्य काल में विषय सेवन की अतितृष्णा रखना और नियतकाल में भी भोगोपभोग की वस्तुओं का अधिक मात्रा में अनुभव करना, यह पांचों भोगोपभोग परिमाणव्रत के अतिचार कहे गये हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षाव्रत के भेद

श्लोक- देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा ।
वैय्यावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

सामायिक वैय्यावृती औ प्रोषध उपवास ।
शिक्षाव्रत चउ भेद हो मिला देश अवकाश ॥९१॥

अन्वयार्थ-

देशावकाशिकं	-	देशावकाशिक
वा	-	और
सामयिकं	-	सामायिक
प्रोषधोपवासः	-	प्रोषधोपवास
वा	-	और
वैय्यावृत्य	-	वैय्यावृत्य
[इमानि]	-	ये
चत्वारि	-	चार
शिक्षाव्रतानि	-	शिक्षाव्रत
शिष्टानि	-	कहे गये हैं

भावार्थ-: देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैय्यावृत्य ये चार शिक्षाव्रत कहे गये हैं क्योंकि इनके माध्यम से ही श्रावकों को साधुचर्या की शिक्षा मिलती है इसलिये यह शिक्षाव्रत कहलाते हैं।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशावकाशिक शिक्षाव्रत का लक्षण

श्लोक- देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेनदेशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

अणुव्रति विस्तृत क्षेत्र का प्रतिदिन करे प्रमाण।
कहा देश अवकाश वह अवधि मांहि पहिचान॥९२॥

अन्वयार्थ-

अणुव्रतानां	-	अणुव्रत के धारक श्रावकों का
प्रत्यहं	-	प्रतिदिन
कालपरिच्छेदनेन	-	समय की मर्यादा के द्वारा
विशालस्य	-	विस्तृत
देशस्य	-	देश का
प्रतिसंहारः	-	संकोच किया जाना
देशावकाशिकं	-	देशावकाशिकव्रत
स्यात्	-	होता है

भावार्थ- दिग्व्रत में जीवनपर्यंत के लिए आवागमन के क्षेत्र की जो बड़ी मर्यादा की जाती है उसमें काल के विभाग से और भी कमी करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है। इसे देशव्रत भी कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशव्रत में क्षेत्र की मर्यादा की रीति

श्लोक- गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च ।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

गृह पुर गोपुर ग्राम वन योजनादि नदि खेत।
कहें देश अवकाश की सीमा भाव समेत ॥९३॥

अन्वयार्थ-

तपोवृद्धाः	-	गणधरदेवादिक आचार्य
गृहहारिग्रामाणां	-	घर, छावनी, गांव
च	-	और
क्षेत्रनदीदावयोजनानां	-	खेत, नदी, वन तथा योजनों को
देशावकाशिकस्य	-	देशावकाशिक शिक्षाव्रत की
सीम्नां	-	सीमा
स्मरन्ति	-	स्मरण करते हैं

भावार्थ - इस व्रत में आवागमन के क्षेत्र का परिमाण किसी प्रसिद्ध गृह, ग्राम, गली, खेत, नदी, जङ्गल और योजन (किलोमीटर) आदि तक का यथाशक्ति किया जाता है।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशव्रत में कालकी मर्यादा की रीति

श्लोक- संवत्सरमृतुमयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च ।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

पक्ष माह नक्षत्र ऋतु माह चार छह वर्ष ।
कही देश अवकाश की सीमा - काल सहर्ष॥९४॥

अन्वयार्थ-

प्राज्ञाः	- गणधरदेवादिक बुद्धिमान पुरुष
संवत्सरं	- एक वर्ष
ऋतुं	- एक ऋतु (दो माह)
अयनं	- एक अयन (छह माह)
मासचतुर्मासपक्षम्	- एक माह, चार माह, एक पक्ष
च	- और
ऋक्षं	- एक नक्षत्र को
देशावकाशिकस्य	- देशावकाशिक व्रत की
कालावधिं	- काल की मर्यादा
प्राहुः	- कहते हैं

भावार्थ- इस व्रत में एक वर्ष, छह माह, चार माह, एक माह, पन्द्रह दिन, और एक नक्षत्र या एक दिन तक काल की मर्यादा बनाई जाती है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशव्रती के उपचार से महाव्रत

श्लोक- **सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात्।**
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते॥९५॥

सूक्ष्म थूल पन पाप का त्याग सीम अतिक्रान्त ।
अतः देश अवकाश व्रत पाय महाव्रत प्रान्त ॥९५॥

अन्वयार्थ-

सीमान्तानां	- सीमाओं के अन्तभाग के
परतः	- आगे
स्थूलेतर पञ्चपापसंत्यागात्	- स्थूल और सूक्ष्म पांचों पापों का सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से
देशावकाशिकेन च	- देशावकाशिक व्रत के द्वारा भी
महाव्रतानि	- महाव्रत
प्रसाध्यन्ते	- सिद्ध किये जाते हैं

भावार्थ- इस देशावकाशिक व्रत को धारण कर सीमा कर लेने से उस सीमा से बाहर के सूक्ष्म या स्थूल सभी तरह के पाप होना बंद हो जाते हैं अतः कषाय की मन्द परणति की अपेक्षा यह व्रत महाव्रत सरीखे हो जाते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशावकाशिक शिक्षाव्रत के अतिचार

श्लोक- प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च॥९६॥

रुपव्यक्त शब्दानयन प्रेषण पुद्गल क्षेप ।
व्रत अवकाशिक देश के ये पांचों विक्षेप॥९६॥

अन्वयार्थ-

प्रेषणशब्दानयनं	-	प्रेषण, शब्द, आनयन
रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ	-	रूपाभिव्यक्ति और पुद्गलक्षेप
(इमे)	-	ये
पञ्च	-	पांच
देशावकाशिकस्य	-	देशावकाशिक शिक्षाव्रत के
अत्ययाः	-	अतिचार
व्यपदिश्यन्ते	-	कहे जाते हैं

भावार्थ- देशव्रत की सीमा से बाहर किसी को भेजना, किसी को शब्द सुनाना, किसी को बुलाना, अपना रूप दिखाकर संकेत करना तथा कंकर-पत्थर फेंककर दूसरे का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना यह पांचों देशावकाशिक व्रत के अतिचार हैं। इन कार्यों को करने से सीमा के बाहर स्वयं नहीं जाने पर भी व्रत में दोष लगता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक शिक्षाव्रत का लक्षण

श्लोक- आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन ।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति॥९७॥

भीतर बाहर अवधि के पूर्णरूप पन पाप ।
त्याग, सुनिश्चित काल तक है सामायिक जाप ॥९७॥

अन्वयार्थ-

सामयिका :	-	आगम के ज्ञाता गणधरदेवादिक
सर्वत्र च.	-	सब जगह (मर्यादा के भीतर और बाहर भी)
अशेषभावेन	-	सम्पूर्ण रूप से
पञ्चाघानां	-	पांच पापों का
आसमयमुक्ति	-	किसी निश्चित समय तक
मुक्तं	-	त्याग करने को
सामयिकं नाम	-	सामायिक नाम का शिक्षाव्रत
शंसन्ति	-	कहते हैं

भावार्थ- सामायिक का समय पूर्ण होने तक हिंसादि पांचों पापों का पूर्णरूप से अर्थात् मन वचन काय तथा कृत कारित अनुमोदना से त्याग करना सामायिक शिक्षाव्रत कहा गया है क्योंकि इस व्रत में मुनियों के समान निर्विकल्पता पूर्वक सामायिक करने की प्रेरणा दी गई है।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय शब्द की व्युत्पत्ति

श्लोक- **मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं पर्य्यङ्कबन्धनं चापि ।**
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

वस्त्र पालथी मुष्टि का बन्धन गाठन बाल।
खड़े बैठने का समय है सामायिक काल ॥९८॥

अन्वयार्थ-

समयज्ञाः	-	आगम के ज्ञाता पुरुष
मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं	-	केश, मुट्ठी और वस्त्र के बंधन के काल को
चापि	-	और भी
पर्यङ्कबन्धनं	-	पालथी बांधने के काल को
वा	-	अथवा
स्थानं	-	खड़े होने के काल को और
उपवेशनं	-	सामायिक का समय
जानन्ति	-	जानते हैं

भावार्थ- जब तक चोटी में गांठ लगी रहे, मुट्ठी बंधी रहे, वस्त्र बंधा रहे। पर्यङ्कासन से बैठ सके अथवा खड्गासन से खड़े रह तब तक का काल सामायिक का समय माना गया है। अर्थात् सामयिक कर्ता अपनी इच्छानुसार निराकुलतापूर्वक उपर्युक्त संकल्प विधि से जब तक सामयिक करे उसके उतने काल को सामयिक का काल कहा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक के योग्य क्षेत्र का निर्देश

श्लोक- एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

चैत्यालय उद्यान वन गृह एकान्त स्थान ।
शान्त प्रांत प्रमुदित धिया कर सामायिक ध्यान॥९९॥

अन्वयार्थ-

सामयिकं	-	वह सामायिक
प्रसन्नधिया	-	निर्मलबुद्धि के धारक श्रावक के द्वारा
एकान्ते	-	स्त्री, पशु या नपुंसकों से रहित प्रदेश में
निर्व्याक्षेपे	-	चित्त में चञ्चलता उत्पन्न करने वाले कारणों से रहित स्थान में
वनेषु	-	वनों में
वास्तुषु च	-	मकानों में
वा	-	अथवा
चैत्यालयेषु अपि च	-	मंदिरों में भी
परिचेतव्यं	-	बढ़ाने के योग्य है

भावार्थ- जहां चित्त में विक्षोप (विकल्प) उत्पन्न न हो ऐसे एकान्त स्थान में, वनों में, वसतिकाओं (धर्मशालाओं) में अथवा चैत्यालयों में प्रसन्नचित्त से सामायिक की वृद्धि करना चाहिये।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक बढ़ाने की रीति

श्लोक- व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या ।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

मन वच तन की व्यग्रता तज हो अन्तर शुद्ध ।
एकासन उपवास में कर सामायिक बुद्ध॥१००॥

अन्वयार्थ-

व्यापारवैमनस्यात्	- शरीरादिक की चेष्टा और मन की व्यग्रता से
विनिवृत्त्यां	- निवृत्ति होने पर
अन्तरात्मविनिवृत्त्या	- मानसिक विकल्पों की विशिष्ट निवृत्ति पूर्वक
उपवासे	- उपवास के दिन
वा	- अथवा
एकभुक्ते	- एकाशन के दिन
च	- और अन्य समय भी
सामयिकं	- सामयिक
बध्नीयात्	- करना चाहिये

भावार्थ- शरीरादिक की चेष्टा और मन की व्यग्रता को दूर करते हुये उपवास अथवा एकाशन के दिन विशेष रूप से सामायिक करनी चाहिये ।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिदिन सामायिक करने का उपदेश

श्लोक- सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

आलस बिन एकाग्र हो प्रतिदिन विधि अनुसार।
कारण पन व्रत पूर्ति में सामायिक अघहार॥१०१॥

अन्वयार्थ-

अनलसेन	- आलस्य से रहित और
अवधानयुक्तेन	- चित्त की एकाग्रता से युक्त पुरुष के द्वारा
व्रतपञ्चकपरिपूरण कारणं	- हिंसा त्याग आदि पांच व्रतों की पूर्ति का कारण
सामयिकं	- सामयिक
प्रतिदिवसमपि	- प्रतिदिन भी
यथावद्	- योग्य विधि के अनुसार
परिचेतव्यं	- बढ़ाने के योग्य है

भावार्थ- सामायिक व्रत, अहिंसादि पांच व्रतों की पूर्ति में कारण है अतः इसे आलस्यरहित, सावधानी पूर्वक प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिये ।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक व्रतधारी की स्थिति

श्लोक- सामयिकें सारम्भः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं।।१०२।।

पूर्ण संग आरंभ बिन गृहि सामायिक लीन।
चेलुपसर्गित ज्यों मुनी गृहियति भावासीन।।१०२।।

अन्वयार्थ-

यतः	-	क्योंकि
सामयिके	-	सामायिक के काल में
सारम्भाः	-	आरम्भ सहित
सर्वेऽपि	-	सभी
परिग्रहाः	-	परिग्रह
नैव सन्ति	-	नहीं ही है
ततः	-	इसलिये
तदा	-	उस समय
गृही	-	गृहस्थ
चेलोपसृष्टमुनिरिव	-	उपसर्ग के कारण वस्त्र से वेष्टित मुनि के समान
यतिभावं	-	मुनिपने को
याति	-	प्राप्त होता है

भावार्थ- सामायिक में प्रवृत गृहस्थ अपने शरीर पर धारण किये हुए वस्त्र को छोड़कर उतने समय के लिये बाकी सभी आरंभ परिग्रह का त्याग कर देता है अतः वह उतने समय के लिये उन निर्ग्रन्थ मुनिराज की तरह दिखाई देता है जिन पर किसी ने उपसर्ग कर वस्त्र डाल दिया हो।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक में परिषहादि सहन करने के निर्देश

श्लोक - शीतोष्णदंशमशकपरिषहमुपसर्गमपि च मौनधराः ।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः॥१०३॥

दंश मशक शीतोष्ण सह परिषहादि उपसर्ग ।
मौनधार सामयिक में थिर कर योग त्रिवर्ग ॥१०३॥

अन्वयार्थ

सामयिकं	- सामायिक को
प्रतिपन्नाः	- स्वीकृत करने वाले गृहस्थ
अचलयोगाः	- स्थिर समाधि अथवा गृहीत अनुष्ठान को न छोड़ते हुए
मौनधराः	- मौनधारी होकर
शीतोष्णदंशमशकपरीषहं	- शीत उष्ण तथा दंशमशक परिषह को
च	- और
उपसर्गमपि	- उपसर्ग को भी
अधिकुर्वीरन्	- सहन करें

भावार्थ - जिस प्रकार मुनिजन उपसर्ग और परिषहों को सहन करते हैं उसी प्रकार सामायिक में बैठे हुए श्रावक भी शीतोष्ण, दंशमशक आदि के परिषह तथा उपसर्ग दृढ़तापूर्वक सहन करें ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक के समय करने योग्य विचार

श्लोक- **अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।**
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

दुखद अशुभ अशरण अथिर वास करूँ संसार ।
किन्तु मोक्ष विपरीत है कर सामयिक विचार॥१०४॥

अन्वयार्थ-

सामयिके	-	सामयिक में
स्थिताः	-	स्थित मनुष्य
इति	-	इस प्रकार
ध्यायन्तु	-	ध्यान करें कि मैं
अशरणं	-	शरण रहित
अशुभं	-	अशुभ
अनित्यं	-	अनित्य
दुःखं	-	दुःखस्वरूप और
अनात्मानं	-	अनात्मस्वरूप
भवं	-	संसार में
आवसामि	-	निवास करता हूँ और
मोक्षः	-	मोक्ष
तद्विपरीतात्मा	-	उससे विपरीत स्वरूप वाला है

भावार्थ - सामायिक के समय श्रावक को विचार करना चाहिये कि मैं जिस संसार में रह रहा हूँ वह अशरण है, अशुभ, अनित्य, दुखरूप तथा आत्मस्वरूप से भिन्न है किन्तु मोक्ष इससे विपरीत स्वभाव वाला है अर्थात् शरण रूप है, शुद्ध, नित्य, सुखमय और आत्मस्वरूप है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार

श्लोक- वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे ।
सामयिकस्यातिगमा 'व्यज्यन्ते पञ्च भावेन॥१०५॥

अनुत्साह अस्मरण मन वच तन दुष्प्रणिधान।
शिक्षाव्रत सामयिक के दोष कहे भगवान्॥१०५॥

अन्वयार्थ-

वाक्कायमानसानां	-	वचन काय और मन के
दुष्प्रणिधानानि	-	दुष्प्रणिधान
अनादरस्मरणे	-	अनादर और अस्मरण
[इति]	-	ये
पञ्च	-	पांच
भावेन	-	परमार्थ से
सामयिकस्य	-	सामायिक के
अतिगमाः	-	अतिचार
व्यज्यन्ते	-	प्रगट किये जाते हैं

भावार्थ - सामायिक करते समय वचन का दुरुपयोग करना, मन में संकल्प- विकल्प करना, काय का हलन चलन करना, सामायिक के प्रति अनादर भाव और सामायिक करना भूल जाना, यह सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार (दोष) माने गए हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का लक्षण

श्लोक- पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

सदा चतुर्दशी अष्टमी त्याग सभी आहार ।
है प्रोषध उपवास जो सद् इच्छा स्वीकार॥१०६॥

अन्वयार्थ-

पर्वणि	-	चतुर्दशी
च	-	और
अष्टम्यां	-	अष्टमी के दिन
सदा	-	सर्वदा के लिये
इच्छाभिः	-	व्रतविधान की वाच्छा से
चतुरभ्यवहार्य्याणां	-	चार प्रकार के आहारों का
प्रत्याख्यानं	-	त्याग करना
प्रोषधोपवासः	-	प्रोषधोपवास
ज्ञातव्यः	-	जानना चाहिए

भावार्थ -: अष्टमी और चतुर्दशी की तिथियाँ पर्व हैं। इन पर्व के दिनों में अर्थात् प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को व्रतधारण करने की इच्छा से चारों प्रकार के आहारों का त्याग करना प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहा गया है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपवास के दिन त्याज्य कार्य

श्लोक- पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात्।।१०७।।

गन्ध पुष्प आरंभ पन पाप न्हवन श्रृंगार ।
नस्याञ्जन उपवास दिन कर देना परिहार।।१०७।।

अन्वयार्थ-

उपवासे	- उपवास के दिन
पञ्चानां	- पांच
पापानां	- पापों का और
अलंक्रिया	- अलंकार धारण करना
आरम्भ	- खेती आदि का आरम्भ करना
गन्ध	- सुगंधित पदार्थों का लेप करना
पुष्पाणां	- पुष्पमालाएं धारण करना
स्नान	- स्नानकरना
अञ्जन	- अञ्जन आदि लगाना तथा
नस्यानां	- नस्य आदि का सूँघना, इन सबका
परिहृतिं	- परित्याग
कुर्य्यात्	- करना चाहिये

भावार्थ -: उपवास के दिन हिंसा आरंभ आदि पाप की क्रियायें तथा विषयानुराग बढ़ाने वाली वस्तुयें तेल, इत्र, माला, स्नान अंजन और सूंघनी आदि का भी त्याग कर देना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपवास के दिन का कर्त्तव्य

श्लोक- धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥

धर्मामृत उपवास में स्वयं पिये पिलवाय।
ज्ञान ध्यान रत चाव से आलस दूर भगाय ॥१०८॥

अन्वयार्थ-

उपवसन्	-	उपवास करने वाला व्यक्ति
सतृष्णः	-	उत्कण्ठित
[सन्]	-	होता हुआ
श्रवणाभ्यां	-	कानों से
धर्मामृतं	-	धर्मरूपी अमृत को
पिबतु	-	स्वयं पीवे
वा	-	अथवा
अन्यान्	-	दूसरों को
पाययेत्	-	पिलावे
वा	-	अथवा
अतन्द्रालुः	-	आलस्य रहित होता हुआ
ज्ञानध्यानपरः	-	ज्ञान और ध्यान में तत्पर
भवतु	-	होवे

भावार्थ - उपवास करने वाला व्यक्ति आलस्यरहित, रुचि से धर्मरूपी अमृत का स्वयं पान करे एवं दूसरों को भी करावे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास का लक्षण

श्लोक- चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०६॥

एक भुक्ति प्रोषध चतुः अशन त्याग उपवास ।
पारण दिन आरंभ कर है प्रोषध उपवास ॥१०९॥

अन्वयार्थ -

चतुराहारविसर्जनं	- चार प्रकार के आहार का त्याग करना
उपवासः	- उपवास है
सकृद्भुक्तिः	- एक बार भोजन करना
प्रोषधः	- प्रोषध है और
यत्	- जो
उपोष्य	- उपवास करने के बाद पारणा के दिन
आरम्भं आचरति	- एक बार भोजन करना है
सः	- वह
प्रोषधोपवासः	- प्रोषधोपवास है

भावार्थ - एक बार भोजन करने का नाम प्रोषध है और चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास कहलाता है। इस तरह आदि और अन्त में एकासन के साथ जो उपवास किया जाता है वह प्रोषधोपवास है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार

श्लोक- **ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।**
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम्॥११०॥

ग्रहण बिछाना त्यागना बिन शोधे बिन देख ।
और अनादर अस्मरण दोष प्रोषधा लेख॥११०॥

अन्वयार्थ-

यत्	-	जो
अदृष्टमृष्टानि	-	बिना देखे या बिना शोधे
ग्रहण	-	पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना
विसर्ग	-	मलमूत्रादि को छोड़ना और
आस्तरणानि	-	संस्तर आदि बिछाना
अनादर	-	अनादर और
अस्मरणे	-	अस्मरणं हैं
तदिदं	-	वे ये
प्रोषधोपवास	-	प्रोषधोपवास व्रत के
व्यतिलंघनपञ्चकं	-	पांच अतिचार हैं

भावार्थ - उपवास के दिवस, बिना देखे या शोधे किसी वस्तु का ग्रहण करना, मलमूत्रादिक का त्याग करना, विस्तर चटाई वगैरह बिछाना रखना, उपवास करने में आदर उत्साह का नहीं रहना और उसे करना ही भूल जाना, प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार हैं ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैयावृत्य शिक्षाव्रत का लक्षण

श्लोक- दानं वैय्यावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन॥१११॥

गुण निधान गृह त्यागि को धर्म निमित जो दान।
विधि से, प्रति उपकार बिन वैय्यावृत्य महान॥१११॥

अन्वयार्थ-

तपोधनाय	- तपरूपधन से युक्त तथा
गुणनिधये	- सम्यग्दर्शनादि गुणों के भंडार
अगृहाय	- गृहत्यागी मुनीश्वर के लिये
विभवेन	- विधिद्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार
अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्	- प्रतिदान और प्रतिउपकार की अपेक्षा से रहित
धर्माय	- धर्म के निमित्त जो
दानं	- दान दिया जाता है वह
वैय्यावृत्यं	- वैयावृत्य
[कथ्यते]	- कहलाता है

भावार्थ - गुणों के भंडार गृहत्यागियों (व्रतियों को भी) को अपना धर्मपालन करने के लिए प्रतिदान और प्रतिउपकार की अपेक्षा से रहित विधिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार दान देने को वैयावृत्य कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैय्यावृत्य का विस्तार

श्लोक- व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम्॥११२॥

सुगुण प्रीतिवश साधु के हाथ पैर सहलाय।
विपदहारि उपकार सब वैय्यावृत कहलाय॥११२॥

अन्वयार्थ-

गुणरागात्	-	सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से
संयमिनां	-	देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमी जनों की
व्यापत्तिव्यपनोदः	-	आई हुई नाना प्रकार की आपत्ति को दूर करना
पदयोः	-	पैरों का, उपलक्षण से हस्तादिक अङ्गों का
संवाहनं	-	दावना
च	-	और इसके सिवाय
अन्योऽपि	-	अन्य भी
यावान्	-	जितना
उपग्रहः	-	उपकार है
सः	-	वह सब
वैयावृत्यम्	-	वैयावृत्य
[उच्यते]	-	कहा जाता है

भावार्थ- गुणानुराग से संयमी पुरुषों की आपत्तियों को दूर करना, उनके पैरों को दबाना तथा और भी अन्य आवश्यक जो सेवा टहल या सार-संभाल की जाती है वह सब वैय्यावृत्य कहलाती है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दान का लक्षण

श्लोक- नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ।।११३।।

सूनारम्भ विहीन यति प्रति दें शुचि दातार।
दान, भक्ति नव सप्तगुण आदर सहित अपार।।११३।।

अन्वयार्थ-

सप्तगुणसमाहितेन	-	सातगुणों से सहित और
शुद्धेन	-	कौलिक, आचरिक तथा शारीरिक शुद्धि से सहित
[दात्रा]	-	दाता के द्वारा
अपसूनारम्भाणां	-	गृहसम्बंधी कार्य तथा खेती आदि के आरम्भ से रहित
आर्याणां	-	सम्यग्दर्शनादि गुणों से सहित मुनियों का
नवपुण्यैः	-	नवधाभक्ति पूर्वक जो
प्रतिपत्तिः	-	आहारादि के द्वारा गौरव किया जाता है
तत्	-	वह
दानं	-	दान
इष्यते	-	माना जाता है

भावार्थ - पंच सूना और आरंभ आदि से रहित आर्य पुरुषों को सप्त गुणों से युक्त श्रावकों द्वारा नवधाभक्ति पूर्वक आहारादि देने के रूप में जो आदर-सत्कार किया जाता है वह दान कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दान का फल

श्लोक- गृहकर्मणापिनिचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ।।११४।।

गृही कर्म अर्जित करम नष्ट करे शुभ दान ।
धो देता ज्यों रुधिर जल पूजा अतिथि महान।।११४।।

अन्वयार्थ -

खलु	-	निश्चय से
अलं	-	जिस प्रकार
वारि	-	जल
रुधिरं	-	खून को
धावते	-	धो देता है
[तथा]	-	उसी प्रकार
गृहविमुक्तानां	-	गृहरहित निर्ग्रन्थ
अतिथीनां	-	मुनियों के लिये दिया हुआ
प्रतिपूजा	-	दान
गृहकर्मणा	-	गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से
निचितमपि	-	उपार्जित
कर्म	-	कर्म को
विमार्ष्टि	-	नष्ट कर देता है

भावार्थ - जैसे जल खून को धो देता है, ठीक उसी प्रकार गृहत्यागी मुनिजनों को यथायोग्य चतुर्विध दान देने से गृहस्थी के कार्यों से सञ्चित बहुत भारी पाप भी नष्ट हो जाता है।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवधा भक्ति का फल

श्लोक- उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु॥११५॥

कीर्ति भोग पूजा तथा सुन्दररूप कुलीन ।
स्तवन दान आराधना भक्ति प्रणति मुनि दीन॥११५॥

अन्वयार्थ -

तपोनिधिषु	-	तप के भंडार स्वरूप मुनियों को
प्रणतेः	-	नमस्कार करने से
उच्चैर्गोत्रं	-	उच्चगोत्र
दानात्	-	आहारादि दान देने से
भोगः	-	भोग
उपासनात्	-	प्रतिग्रहण आदि करने से
पूजा	-	सम्मान
भक्तेः	-	भक्ति करने से
सुन्दररूपं	-	सुन्दर रूप और
स्तवनात्	-	स्तुति करने से
कीर्तिः	-	सुयश
[प्राप्यते]	-	प्राप्त किया जाता है

भावार्थ- तपोनिधि साधुजनों को नमस्कार करने से उच्चगोत्र, दान देने से भोग, उपासना करने से पूजा प्रतिष्ठा, भक्ति करने से सुन्दररूप और स्तुति करने से यश कीर्ति प्राप्त होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्पदान से महाफल की प्राप्ति

श्लोक- क्षितिगतमिव बटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्।।११६।।

योग्यकाल में पात्र को दिया अल्प भी दान।
फले, भूमिगत बीज लघु वट तरु विभव समान।।११६।।

अन्वयार्थ -

काले	-	उचित समय में
पात्रगतं	-	योग्य पात्र के लिये दिया हुआ
अल्पमपि	-	थोड़ा भी
दानं	-	दान
क्षितिगतं	-	उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए
वटबीजमिव	-	वटवृक्ष के बीज के समान
शरीरभृताम्	-	प्राणियों के लिये
छाया विभवं	-	माहात्म्य और वैभव से युक्त
बहु	-	बहुत भारी
इष्टं	-	अभिलषित
फलं	-	फल को
फलति	-	फलता है

भावार्थ - उत्तम भूमि में बोये गये वट के छोटे से भी बीज के सामान विशुद्ध भावों से पात्र के प्रति दिया गया अल्प दान भी समय आने पर प्राणियों को छाया रूप वैभव के साथ भारी मिष्ट फल को देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दान के भेद

श्लोक- आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः॥११७॥

आहारौषध उपकरण और दान आवास ।
वैयावृति के भेद ये चार कहे सुखराश ॥११७॥

अन्वयार्थ -

चतुरस्राः	- विद्वज्जन
आहारौषधयोः	- आहार औषध
च	- और
उपकरणावासयोः अपि	- उपकरण तथा आवास के भी
दानेन	- दान से
वैयावृत्यं	- वैयावृत्य को
चतुरात्मत्वेन	- चार प्रकार का
ब्रुवते	- कहते हैं

भावार्थ -: आहार, औषधि, उपकरण (ज्ञान-संयम के साधन, शास्त्र एवं पीछी कमण्डलु) और आवास के भेद से वैय्यावृति (दान) चार प्रकार की है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दानों में प्रसिद्ध होने वालों के नाम

श्लोक- श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः ।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

श्रीषेण सेनावृषभ कौण्डेश सम्भ्रान्त ।
शूकर क्रमशः दान में हैं प्रसिद्ध दृष्टान्त॥११८॥

अन्वयार्थ -

श्रीषेणवृषभसेने	- श्रीषेण, वृषभसेना
कौण्डेशः	- कौण्डेश
च	- और
शूकरः	- सूकर
एते	- ये चार
चतुर्विकल्पस्य	- चार भेद वाले
वैयावृत्यस्य	- वैयावृत्य के
दृष्टान्ताः	- दृष्टान्त
मन्तव्याः	- मानने के योग्य हैं

भावार्थ - वैय्यावृति (दान) के इन चार भेदों में क्रमशः श्रीषेण राजा, वृषभसेना वणिकपुत्री, कौण्डेश ग्वाला और सूकर प्रसिद्ध हुये हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्हत्पूजा का वैयावृत्य में अन्तर्भाव

श्लोक- देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥११६॥

पूजा जिनवर देव की करे सभी दुख दूर ।
काम दहे फल वांछ दे नितकर आदर पूर ॥११९॥

अन्वयार्थ-

आदृतः	-	श्रावक को आदर से युक्त होकर
नित्यं	-	प्रतिदिन
कामदुहि	-	मनोरथों को पूर्ण करने वाले और
कामदाहिनि	-	काम को भस्म करने वाले
देवाधिदेवचरणे	-	अर्हन्त भगवान के चरणों में
सर्वदुःखनिर्हरणं	-	समस्त दुःखों को दूर करने वाली
परिचरणं	-	पूजा
परिचिनुयात्	-	करनी चाहिये

भावार्थ- सर्वकामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा कामविकारो को जलाने वाली जिनेन्द्र भगवान की पूजा सर्वदुःखों की विनाशक है अतः इसे नित्य ही आदरपूर्वक श्रावक को करना चाहिये।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजा का फल प्राप्त करने वाले मेंढ़क का निर्देश

श्लोक- अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् ।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥१२०॥

महिमा प्रभु चरणार्च की भविजन में प्रगटाय ।
प्रमुदित मेंढक फूल ले राजगृही गुण गाय॥१२०॥

अन्वयार्थ-

प्रमोदमत्तः	- हर्ष से प्रमत्त
भेकः	- मेंढ़क ने
राजगृहे	- राजगृह नगर में
एकेन कुसुमेन	- एक पुष्प के द्वारा
महात्मनां	- भव्यजीवों के आगे
अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं	- अर्हन्तभगवान् के चरणों की पूजा का माहात्म्य
अवदत्	- प्रकट किया था

भावार्थ- राजगृही नगरी में अति प्रमोद को प्राप्त मेंढ़क ने एक पुष्प के द्वारा पूजन के भाव से अरहंत देव के चरणों की पूजा का माहात्म्य महात्मा पुरुषों के सम्मुख प्रगट किया था।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैयावृत्य शिक्षाव्रत के अतिचार

श्लोक- हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि ।
वैयावृत्त्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ।।१२१।।

पत्र हरित रख ढ़क अशन मत्सरान्य दातार।
बिन आदर विस्मृति दिया दान पञ्च अतिचार।।१२१।।

अन्वयार्थ-

हि	- निश्चय से
हरितपिधाननिधाने	- हरितपत्र आदि से, देने योग्य वस्तु को ढंकना तथा उस पर रखना
अनादरस्मरणमत्सरत्वानि	- अनादर, अस्मरण और मत्सरत्व
एते पञ्च	- ये पांच
वैयावृत्यस्य	- वैयावृत्य के
व्यतिक्रमाः	- अतिचार
कथ्यन्ते	- कहे जाते हैं

भावार्थ -: हरित पत्र से ढ़की वस्तु को आहार में देना, हरित पत्र पर रखी वस्तु को आहार में देना, अनादरपूर्वक आहारादि देना, दान देने को या दान-विधि को भूल जाना तथा अन्य दाता के साथ ईर्ष्या भाव रखना यह पांच प्रकार के, वैयावृत शिक्षाव्रत के अतिचार (दोष) हैं।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखनाधिकार

सल्लेखना का लक्षण

श्लोक- उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुःसल्लेखनामार्याः।।१२२।।

जरा रोग दुर्भिक्ष या उपसर्गापरिहार्य ।
धर्म निमित तन त्यागना सल्लेखन कह आर्य।।१२२।।

अन्वयार्थ-

आर्याः	-	गणधरादिक देव
निःप्रतीकार	-	प्रतिकार रहित
उपसर्गे	-	उपसर्ग
दुर्भिक्षे	-	दुष्काल
जरसि	-	बुढ़ापा
च	-	और
रुजायां	-	रोग के उपस्थित होने पर
धर्माय	-	धर्म के लिए
तनुविमोचनं	-	शरीर के छोड़ने को
सल्लेखनां	-	सल्लेखना
आहुः	-	कहते हैं

भावार्थ - निष्प्रतिकार उपसर्ग के आने पर, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा और असाध्य रोग के उपस्थित होने पर रत्नत्रय स्वरूप धर्म की रक्षा के लिये कषाय को कृश करते हुये शरीर के त्याग करने को सल्लेखना कहते हैं।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखना को पूर्ण प्रयत्न के साथ करना चाहिए

श्लोक- अन्तक्रियाधिकरणं तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

देव कहें तप का सुफल अन्त क्रिया सन्यास ।
अतः समाधी शक्ति लख पाने करो प्रयास॥१२३॥

अन्वयार्थ-

यस्मात्	-	क्योंकि
सकलदर्शिनः	-	सर्वज्ञ भगवान्
अन्तक्रियाधिकरणं	-	सन्यास धारण करने को
तपः फलं	-	तप का फल
स्तुवते	-	कहते हैं
तस्मात्	-	इसलिये
यावद्विभवं	-	यथाशक्ति
समाधिमरणे	-	समाधिमरण के विषय में
प्रयतितव्यं	-	प्रयत्न करना चाहिये

भावार्थ - जीवन के अन्त समय में सन्यास रूप क्रिया (सल्लेखना) का आश्रय लेना ही जीवन भर की तपस्या का फल है अतः जब तक शक्ति रहे तब तक समाधिमरण करने में प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखना कि विधि

समाधि में आलोचना

श्लोक- स्नेहंवैरंसङ्गंपरिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वाक्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ।।१२४।।

नेह बैर संग मूर्च्छा तज प्रियवच मन शुद्ध ।
क्षमा करें मांगे क्षमा सबसे, हो प्रतिवुद्ध।।१२४।।

अन्वयार्थ-

स्नेहं	-	प्रीति
वैरं	-	बैर
सङ्गं	-	ममत्व भाव
च	-	और
परिग्रहं	-	परिग्रह को
अपहाय	-	छोड़कर
शुद्धमनाः	-	स्वच्छ हृदय होता हुआ
प्रियैःवचनैः	-	मधुर वचनों से
स्वजनं	-	अपने कुटुम्बी जन तथा
परिजनमपि	-	परिकर के लोगों को
क्षांत्वा	-	क्षमा कराकर
क्षमयेत्	-	स्वयं क्षमा करे

भावार्थ- सल्लेखना धारण करते हुए साधक, कुटुम्ब मित्रादिकों से स्नेह दूर कर, शत्रुजनों से बैर भाव छोड़कर बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का परित्याग कर, विशुद्ध मन से स्वजन और परिजनों को क्षमा करें तथा उनसे भी क्षमा मांगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आलोचना पूर्वक महाव्रत धारण का उपदेश

श्लोक- आलोच्यसर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निश्शेषम्॥१२५॥

कृत कारित अनुमोद से सभी पाप आलोच।
धार महाव्रत आमरण तज छल औ संकोच ॥१२५॥

अन्वयार्थ-

कृतकारितम् अनुमतं च	-	[तथा] कृत कारित और अनुमोदित
सर्वं	-	सभी
एनः	-	पापों की
निर्व्याजं	-	निश्छल भाव से
आलोच्य	-	आलोचना कर
आमरणस्थायि	-	मरणपर्यन्त स्थिर रहने वाले
निश्शेषं महाव्रतं	-	समस्त महाव्रतों को
आरोपयेत्	-	धारण करे

भावार्थ -: और पुनः जीवन भर के कृत कारित अनुमोदित सर्व पापों की निश्छल भाव से आलोचना करके मरणपर्यंत स्थिर रहने वाले सर्व महाव्रतों को धारण करे।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतअमृत का पान करने की प्रेरणा

श्लोक- शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः।।१२६।।

शोक खेद भय नेह अरु द्वेष अरति कर त्याग ।
प्रगट शक्ति उत्साह कर मन श्रुत अमृत पाग ।।१२६।

अन्वयार्थ-

शोकं	- शोक
भयं	- भय
अवसादं	- खेद
क्लेदं	- स्नेह
कालुष्यं	- द्वेष और
अरतिमपि	- अप्रीति को भी
हित्वा	- छोड़कर
च	- तथा
सत्त्वोत्साहं	- धैर्य और उत्साह को
उदीर्य	- प्रकट कर
श्रुतः अमृतैः	- शास्त्र रूप अमृत के द्वारा
मनः	- चित्त को
प्रसाद्यम्	- प्रसन्न करना चाहिए

भावार्थ - इस प्रकार सल्लेखना स्वीकार करने के बाद शोक, भय, विषाद, स्नेह, कालुष्य और अरतिभाव को छोड़कर बल और उत्साह को प्रगट कर अमृतमय श्रुतवचनों से मन को प्रसन्न रखना चाहिये।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहार त्याग का क्रम

श्लोक- आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥

क्रमशः अन्नाहार तज पानस्निग्ध बढ़ाय ।
तथा छोड़ स्निग्ध सब जल कांजीर सुहाय॥१२७॥

अन्वयार्थ-

क्रमशः	-	क्रम से
आहारं	-	कवलाहार को
परिहाप्य	-	छुड़वाकर
स्निग्धंपानं	-	दूध आदि स्निग्ध पेय को
विवर्द्धयेत्	-	बढ़ावे
च	-	पश्चात्
क्रमशः	-	क्रम से
स्निग्धं	-	दूध आदि स्निग्ध पेय को
हापयित्वा	-	छुड़वाकर
खरपानं	-	कांजी आदि खरपान को
पूरयेत्	-	बढ़ावे

भावार्थ - सल्लेखनाधारी सल्लेखना करते समय अन्न के आहार को छोड़कर क्रमशः दूध या छांछ को लेवे और पीछे दूध या छाँछ को भी छोड़कर काँजी तथा गर्म जल लेवे।

❊

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शेष आहार त्याग का क्रम

श्लोक - खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

और अन्ततः छोड़ जल अनशन नाता जोड़।
णमोकार में मन लगा जागृति से तन छोड़ ॥१२८॥

अन्वयार्थ-

खरपानहापनाम् अपि	- गर्म जल का भी त्याग
कृत्वा	- करके
शक्त्या	- शक्ति के अनुसार
उपवासम् अपि	- उपवास भी
कृत्वा	- करके
सर्वयत्नेन	- पूर्ण तत्परता से
पञ्चनमस्कारमनाः(सन्)	- पञ्चनमस्कार मन्त्र में मन लगाता हुआ
तनुं	- शरीर को
त्यजेत्	- छोड़े

भावार्थ- सल्लेखनाधारी काँजी और गर्म जल का भी त्याग करके शक्ति से उपवास कर सर्वप्रकार व्रतादि में यत्न से पञ्च नमस्कार मन्त्र का ध्यान करता हुआ शरीर छोड़े।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखना के अतिचार

श्लोक- जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः ।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥१२६॥

चाह, मरण जीवन तथा मित्र स्मृती निदान ।
मन भय से घिरना रहे दोष सुसल्लेखान्॥१२९॥

अन्वयार्थ-

जीवितमरणाशंसे	- जीविताशंसा, मरणाशंसा
भय	- भय
मित्रस्मृति	- मित्रस्मृति और
निदान नामानः	- निदान नाम से युक्त
पञ्च	- पांच
सल्लेखनातिचाराः	- सल्लेखना के अतिचार
जिनेन्द्रैः	- जिनेन्द्र भगवान के द्वारा
समादिष्टाः	- कहे गये हैं

भावार्थ -: अधिक समय तक जीने की चाह करना, जल्दी मरने की चाह करना, क्षुधादि का भय करना, मित्रों की याद करना, और अगले भव में भोगों की इच्छा करना यह सल्लेखनाव्रत के पांच अतिचार हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखना धारण का फल

श्लोक- निःश्रेय समभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढ़ः ॥१३०॥

दुख-विरहित अनुभूत- सुख अम्बुधि शिव निस्तीर ।
और पाय कोई क्षपक दिवि के सुख दुस्तीर॥१३०॥

अन्वयार्थ-

पीतधर्मा	-	धर्म का पान करने वाला कोई क्षपक
सर्वैः	-	सब
दुःखैः	-	दुखों से
अनालीढ़ः	-	अछूता रहता हुआ
निस्तीरं	-	अन्तरहित तथा
सुखाम्बुनिधिं	-	सुख के समुद्र स्वरूप
निःश्रेयसं	-	मोक्ष का
निःपिबति	-	अनुभव करता है (और कोई क्षपक)
दुस्तीरं	-	बहुत समय में समाप्त होने वाली
अभ्युदयं	-	अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा का अनुभव करता है

भावार्थ -: समाधिमरण करने वाला जीव धर्मरूपी अमृत का पान कर सभी प्रकार के दुखों से रहित होता हुआ अहमिन्द्रादि पद रूप अभ्युदय का अनुभव कर अन्त में मोक्ष सुख को पाता है।

❁

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्ष का लक्षण

श्लोक- जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

रोग जन्म दुख मरण भय जरा शोक बिन शुद्ध।
सुखद नित्य निर्वाण वह है निश्रेय विशुद्ध ॥१३१॥

अन्वयार्थ-

जन्मजरामयमरणैः	-	जन्म, वार्धक्य, रोग, मरण
शोकैः	-	शोक
दुःखैः	-	दुख
च	-	और
भयैः	-	भयों से
परिमुक्तं	-	रहित
शुद्धसुखं	-	शुद्ध सुख से सहित
नित्यं	-	नित्य- अविनाशी
निर्वाणं	-	निर्वाण
निःश्रेयसं	-	निःश्रेयस
इष्यते	-	माना जाता है

भावार्थ -: जन्म, बुढापा, रोग, मृत्यु, शोक, दुख और डर से रहित अविनश्वर और सच्चे सुखसहित सर्वकर्मरहित आत्मा की विशुद्ध अवस्था को मोक्ष कहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त जीवों का वर्णन

श्लोक- विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्।।१३२।।

चतुष्टयानन्ते सहित स्वस्थ तृप्ति शुचि राश ।
ज्यों के त्यों निस्सीम सिद शिव में करें निवास।।१३२।।

अन्वयार्थ-

विद्यादर्शनशक्ति	-	केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य,
स्वास्थ्यप्रह्लाद	-	परम उदासीनता, अनन्तसुख,
तृप्तिशुद्धियुजः	-	तृप्ति और शुद्धि को प्राप्त
निरतिशयाः	-	हीनाधिकता से रहित और
निरवधयः	-	अवधि से रहित जीव
सुखं	-	सुख स्वरूप
निःश्रेयसं	-	मोक्षरूप निःश्रेयस में
आवसन्ति	-	निवास करते हैं

भावार्थ - उस मोक्ष में रहने वाले सिद्ध भगवान अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख रूप परम स्वास्थ्य, आनन्द, तृप्ति एवं शुद्धि से संयुक्त रहते हैं, वे हीनाधिक भाव से रहित समान गुणों के धारक हैं और अनन्तकाल तक सुखपूर्वक उस निश्रेयस् में निवास करते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त जीवों के गुणों में विकार का अभाव

श्लोक- कालेकल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रियालक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः॥१३३॥

कल्प काल बीतें भले सिद्ध न विक्रिय प्राप्त ।
तीन लोक मेटन पटू चाहे हो उत्पात ॥१३३।

अन्वयार्थ-

कल्पशते	-	सैकड़ों कल्पकाल बराबर
काले	-	काल के
गतेऽपि	-	बीत जाने पर भी
च	-	और
यदि	-	यदि
त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः	-	तीनों लोकों के संभ्रान्त करने में समर्थ
उत्पातः अपि	-	उत्पात भी
स्यात्	-	होवे तो भी
शिवानां	-	सिद्धों में
विक्रिया	-	विकार
न लक्ष्या	-	दिखाई नहीं देता

भावार्थ - तीनों लोकों को उलट-पुलट करने में समर्थ कोई महान उत्पात होने पर भी या सैकड़ों कल्पकालों के बीत जाने पर भी मुक्त जीवों में किसी प्रकार का विकार (परिवर्तन) संभव नहीं ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त जीवों की शोभा का वर्णन

श्लोक- निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते ।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥१३४॥

कीट कालिमा रहित ज्यों स्वर्ण सुभासुर प्राप्त ।
लोक शिखर पर सिद्ध त्यों राजै शोभा व्याप्त ॥१३४॥

अन्वयार्थ-

निष्किट्टिकालिकात्	-	कीट और कालिमा से रहित
छविचामीकर	-	कान्तिवाले स्वर्ण के समान
भासुरात्मानः	-	जिसका स्वरूप प्रकाशमान हो रहा है ऐसे
निःश्रेयसमधिपन्नाः	-	मोक्ष को प्राप्त हुये सिद्ध परमेष्ठी
त्रैलोक्य	-	तीन लोक के
शिखामणिश्रियं	-	अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को
दधते	-	धारण करते है

भावार्थ -: उस निःश्रेय को प्राप्त हुए जीव कीट और कालिमा से रहित स्वच्छ स्वर्ण के समान दैदीप्यमान आत्मस्वरूप के धांरक होकर त्रैलोक्य के चूड़ामणि रत्न की शोभा को धारण करते है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखनाधारी का अभ्युदय रूप फल

श्लोक- पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥१३५॥

फले समाधी वृष सुरग सुबल भोग परिवार ।
पूजार्थाज्ञा विभव से चकित स्वयं, संसार॥१३५॥

अन्वयार्थ-

सद्धर्मः	-	सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म
बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः	-	बल, परिवार तथा काम और भोगों से परिपूर्ण
पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः	-	पूजा, अर्थ, आज्ञा तथा ऐश्वर्य के द्वारा
अतिशयित भुवनं	-	संसार को आश्चर्य युक्त करने वाले तथा स्वयं
अद्भुतं	-	आश्चर्यकारी
अभ्युदयं	-	स्वर्गादिरूप अभ्युदय को
फलति	-	फलता है

भावार्थ - सल्लेखना आदि धर्म के धारण करने से प्रतिष्ठा, धन, आज्ञा के ऐश्वर्य तथा बल, परिजन आदि और भोगों की अधिकता से लोकातिशायी, आश्चर्यजनक इन्द्र आदि पद की प्राप्ति रूप उत्कर्ष प्राप्त होता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमाधिकार

ग्यारह प्रतिमाओं का निर्देश

श्लोक- **श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।**
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

श्रावक पद ग्यारह कहे विश्वविज्ञ जिननाथ ।
क्रमशः उत्तरगुण बढ़ें पूर्व गुणों के साथ ॥१३६॥

अन्वयार्थ-

देवैः	-	तीर्थंकर भगवान् के द्वारा
एकादश	-	ग्यारह
श्रावकपदानि	-	श्रावक की प्रतिमाएँ
देशितानि	-	कही गई है
येषु	-	जिनमें
खलु	-	निश्चय से
स्वगुणाः	-	अपनी प्रतिमा सम्बन्धी गुण
पूर्वगुणैःसह	-	पूर्वप्रतिमा सम्बन्धी गुणों के साथ
क्रमविवृद्धाः	-	क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुये
संतिष्ठन्ते	-	स्थित होते हैं

भावार्थ - श्री तीर्थंकर देवों ने श्रावक के ग्यारह पद (प्रतिमायें) कहे हैं। इनमें निश्चय से प्रत्येकपद (प्रतिमा) के गुण अपने से पूर्ववर्ती गुणों के साथ क्रम से बढ़ते हुए रहते हैं।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन प्रतिमाधारी का लक्षण

श्लोक- सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः॥१३७॥

शुद्धदृष्टि प्रतिमा प्रथम जिनमत पर विश्वास ।
पंच परमगुरु शरण गह भव तन भोग उदास॥१३७॥

अन्वयार्थ-

सम्यग्दर्शनशुद्धः	-	जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है
संसारशरीरभोगनिर्विण्णः	-	संसार, शरीर और भोगों से उदास है
पञ्चगुरुचरणशरणः	-	पञ्चपरमेष्ठियों के चरणों की शरण जिसे प्राप्त हुई है तथा
तत्त्वपथ गृह्यः	-	आठमूलगुणों को जो धारण कर रहा है वह
दर्शनिकः	-	दार्शनिक श्रावक है

भावार्थ - जो निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक है, संसार शरीर और इंद्रियों के भोगों से उदास है और जो पंच परमेष्ठी की शरण को प्राप्त तात्विक (सन्मार्ग) मार्ग को ग्रहण करने का पक्ष रखता है वह दार्शनिक (प्रथम प्रतिमाधारी) श्रावक है।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रत प्रतिमाधारी का स्वरूप

श्लोक- निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्योयोऽसौ व्रतिनां मतोव्रतिकः ॥१३८॥

निरतिचार अणुव्रत तथा शील सप्त सहधार।
हो निशल्य जीवन जिए व्रतियों का आचार॥१३८॥

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
निःशल्यः	-	शल्यरहित होता हुआ
निरतिक्रमणं	-	अतिचार रहित
अणुव्रतपञ्चकमपि	-	पांचों अणुव्रतों को
च	-	और
शीलसप्तकमपि	-	सातों शीलों को
धारयते	-	धारण करता है
असौ	-	वह
व्रतिनां	-	गणधरदेवादिक व्रतियों के मध्य में
व्रतिकः	-	व्रतिक नाम का श्रावक
मतः	-	माना गया है

भावार्थ - माया मिथ्यात्व और निदान इन तीन शल्यों को छोड़कर अतिचार रहित पाँच अणुव्रतों और सात शीलव्रतों को धारण करने वाला द्वितीय प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक प्रतिमाधारी का स्वरूप

श्लोक- चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी॥१३६॥

त्रयांवरत चउ चउ नमनथित निषद्यं द्वय नग्न ।
शुद्धयोग कर वन्दना संधिकाल में मग्न॥१३९॥

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
चतुरावर्तत्रितयः	-	चार बार तीन तीन आवर्त करता है
चतुः प्रणामः	-	चार प्रणाम करता है
स्थितः	-	कायोत्सर्ग से खड़ा होता है
यथाजातः	-	बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है
द्विनिषद्यः	-	दो बार बैठकर नमस्कार करता है
त्रियोगशुद्धः	-	तीनों योगों को शुद्ध रखता है और
त्रिसन्ध्यं	-	तीनों संध्याओं में
अभिवन्दी	-	वन्दना करता है
[सः]	-	वह
सामयिकः	-	सामयिक प्रतिमाधारी है

भावार्थ - तीनों सन्ध्याओं में निर्दोष और विधिवत् सामायिक को करने वाला श्रावक सामायिक प्रतिमाधारी कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रोषधोपवास प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे-मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः॥१४०॥

माह-माह चउ पर्व में बिन निज शक्ति छिपाय ।
नियम प्रोषधा ध्यानरत पद प्रोषध कहलाए ॥१४०॥

अन्वयार्थ

यः	-	जो
मासे मासे	-	प्रत्येक मास में
चतुर्ष्वपि	-	चारों
पर्वदिनेषु	-	पर्व के दिनों में
स्वशक्तिम्	-	अपनी शक्ति को
अनिगुह्य	-	न छिपाकर
प्रोषधनियमविधायी	-	प्रोषध सम्बन्धी नियम को करता हुआ
प्रणिधिपरः	-	एकाग्रता में तत्पर रहता है
[सः]	-	वह
प्रोषधानशनः	-	प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी है

भावार्थ - जो हर महिने में दोनों अष्टमियों और दोनों चतुर्दशियों के दिनों में अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर धर्मध्यान में लीन होता हुआ विधिपूर्वक प्रोषधोपवास करताहै वह प्रोषधप्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सचित्त त्याग प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः।।१४१।।

मूल फूल फल शाक औ शाखा बीज करीर।
जो सचित्त खाता नहीं दयामूर्ति गुणधीर।।१४१।।

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
दयामूर्तिः	-	दया की मूर्ति होता हुआ
आमानि	-	अपक्व कच्चे
मूलफलशाक	-	मूल, फल, शाक
शाखाकरीरकन्द	-	शाखा करीर कन्द
प्रसूनबीजानि	-	प्रसून और बीज को
न अत्ति	-	नहीं खाता है
सोऽयं	-	वह यह
सचित्तविरतः	-	सचित्त त्यागी है

भावार्थ - जो व्यक्ति अपक्व, कच्चे, अशुष्क तथा सचित्त (अंकुरोत्पत्ति के योग्य) जड़, फल, शाक, डाली, कोंपल, कन्द, फूल बगैरह नहीं खाताहै वह सचित्त त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः ।।१४२।।

खाद्य लेह पानान्न का रजनीमांहि आहार।
नवकोटी से तज बने. प्राणि दया अवतार।।१४२।।

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
सत्वेषु	-	जीवों पर
अनुकम्पमानमनाः	-	दयालुचित्त होता हुआ
विभावर्याम्	-	रात्रि में
अन्नं	-	अन्न
पानं	-	पेय
खाद्यं	-	खाद्य और
लेह्य	-	लेह्य पदार्थ को
नाश्नाति	-	नहीं खाता है
स च	-	वह
रात्रिभुक्ति विरतः	-	रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमाधारी श्रावक
[अस्ति]	-	है

भावार्थ - जीव दया पालन करने के लिये जो व्यक्ति रात्रि में चारों प्रकार के (अन्न पान खाद्य लेह्य) आहार का नवकोटि पूर्वक त्याग कर देता है वह रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक कहलाता है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥१४३॥

योनि बीज मल गलन तन घृणागेह दुर्गन्ध।
विरत काम, लख काय यों ब्रह्मचारी निर्द्वन्द॥१४३॥

अन्वयार्थ-

मलबीजं	-	शुक्रशोणितरूपमल से उत्पन्न
मलयोनिं	-	मलिनता का कारण
गलन्मलं	-	मलमूत्रादि को झराने वाले
पूतिगन्धि	-	दुर्गन्धि से सहित और
बीभत्सं	-	ग्लानि को उत्पन्न करने वाले
अङ्गं	-	शरीर को
पश्यन्	-	देखता हुआ
यः	-	जो
अनङ्गात्	-	कामसेवन से
विरमति	-	विरत होता है
सः	-	वह
ब्रह्मचारी	-	ब्रह्मचारी अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक है

भावार्थ - जो व्रती, शरीर को रजोवीर्य से उत्पन्न, अपवित्रता का कारण, नवद्वारों से मल बहाने वाला तथा दुर्गंध और ग्लानियुक्त जानकर काम सेवन का सर्वथा त्याग कर देता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरम्भ त्याग प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ।।१४४।।

वाणिज कृषि सेवादि जो प्राणि प्राण बध हेतु।
त्याग प्रमुख आरंभ का अनारंभ पद केतु।।१४४।।

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
प्राणातिपातहेतोः	-	प्राणघात के कारण
सेवाकृषिवाणिज्य	-	सेवा, खेती तथा व्यापार आदि
प्रमुखात्	-	प्रमुख
आरम्भतः	-	आरम्भ से
व्युपारमति	-	निवृत्त होता है
असौ	-	वह
आरम्भविनिवृत्तः	-	आरम्भ त्याग प्रतिमा का धारक है

भावार्थ - जो व्यक्ति जीव हिंसा के कारणभूत नोकरी, खेती, व्यापार आदि प्रमुख आरम्भों का त्याग करता है वह आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी श्रावक माना जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रह त्याग प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः॥१४५॥

दशविध संग ममत्व तज निर्ममत्व रस पाग ।
हो संतोषी स्वस्थ, संग कर परिचित्त सुत्याग॥१४५॥

अन्वयार्थ-

दशसु	-	दश
बाह्येषु	-	बाह्य
वस्तुषु	-	वस्तुओं में
ममत्वं	-	ममता भाव को
उत्सृज्य	-	छोड़कर
निर्ममत्वरतः	-	निर्ममत्वभाव में लीन होता हुआ जो
स्वस्थः	-	आत्मस्वरूप में स्थित तथा
संतोषपरः	-	सन्तोष में तत्पर रहता है
सः	-	वह
परिचित्तपरिग्रहात्	-	सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से
विरतः	-	विरत होता है

भावार्थ - जो मनुष्य बाह्य दश प्रकार के परिग्रहों से सर्वथा ममताभाव छोड़कर निर्मोही होता हुआ, मायाचार आदि से रहित परिग्रह की आकांक्षा का त्याग करता है वह परिग्रह त्याग प्रतिमा धारी है।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुमति त्याग प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक- अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

ऐहिक संगारंभ में जो अनुमति ना देय ।
निश्चित अनुमति विरत वह समधी सबका ज्ञेय॥१४६॥

अन्वयार्थ-

खलु	-	निश्चय से
आरम्भे	-	खेती आदि के आरंभ में
वा	-	अथवा
परिग्रहे	-	परिग्रह में
वा	-	अथवा
ऐहिकेषु कर्मसु	-	इस लोक सम्बन्धी कार्यों में
यस्य	-	जिसके
अनुमतिः	-	अनुमोदना
न अस्ति	-	नहीं है
स	-	वह
समधीः	-	समान बुद्धि का धारक श्रावक
अनुमतिविरतः	-	अनुमति त्याग प्रतिमा का धारी
मन्तव्यः	-	माना जाना चाहिये

भावार्थ- जो किसी भी खेती आदि आरंभ, धन आदि परिग्रह व विवाह आदिक इस लोक सम्बन्धी कार्यों में अनुमति नहीं देता वह समभाव का धारक श्रावक अनुमति त्याग प्रतिमाधारी माना जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा का स्वरूप

श्लोक - गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

गृह तज मुनि वन में पहुंच गुरु समीप व्रतधार ।
चेलखंड उंत्कृष्ट पद कर तप भिक्षाहार। ।१४७॥

अन्वयार्थ-

गृहतो	-	घर से
मुनिवनं	-	मुनियों के वन को
इत्वा	-	जाकर
गुरूपकण्ठे	-	गुरु के पास
व्रतानि	-	व्रत
परिगृह्य	-	ग्रहण कर
भैक्ष्याशनः	-	भिक्षाभोजन करता हुआ
तपस्यन्	-	तपश्चरण करता है तथा
चेलखंडधरः	-	वस्त्र के एक खंड को धारण करता है वह
उत्कृष्टः	-	उत्कृष्ट श्रावक है

भावार्थ - जो घर छोड़कर मुनियों के समूह (संघ) में जाकर गुरु समीप व्रतों को ग्रहण करके भिक्षा-वृत्ति से आहार ग्रहण करते हुये तपस्या करता है और खंड़वस्त्र को धारण करता है वह उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेष्ठज्ञाता का स्वरूप

श्लोक- **पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।**
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

पाप शत्रु है जीव का धर्म बन्धु हितकार ।
यों श्रावक समयज्ञ जो शिवध्रुव जाननहार ॥१४८॥

अन्वयार्थ-

पापम्	-	पाप ही
जीवस्य	-	जीव का
अरातिः	-	शत्रु है और
धर्मः	-	धर्म ही जीव का
बन्धुः	-	हितकारी है
इति	-	इस प्रकार
निश्चिन्वन्	-	निश्चय करता हुआ वह श्रावक
यदि	-	यदि
समयं	-	आगम को
जानीते	-	जानता है
[तर्हि]	-	तो वह
ध्रुवं	-	निश्चय से
श्रेयोज्ञाता	-	श्रेष्ठ ज्ञाता अथवा कल्याण का ज्ञाता
भवति	-	होता है

भावार्थ - जीव का अपकारक होने से पाप शत्रु है और उपकारक होने से धर्म मित्र है। इस प्रकार विचार कर जो आगम (शास्त्र) को जानता है वह ही श्रेष्ठ ज्ञाता अर्थात् आत्म कल्याण का जानकार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रय धर्म का फल

श्लोक-

येन स्वयं वीतकलङ्कविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं ।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषुविष्टपेषु।।१४६।।

करण्ड निज आतम बना भरे विमल यदि रत्न।
पतिवांछा सर्वार्थ फिर सिद्धिवरे कर यत्न।।१४९।।

अन्वयार्थ -

येन	-	जिसने
स्वयं	-	अपने आत्मा को
वीतकलङ्क	-	निर्दोष
विद्यादृष्टिक्रिया	-	ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप
रत्नकरण्डभावम्	-	रत्नों के पिटारापन को
नीतः	-	प्राप्त कराया है
तं	-	उसे
त्रिषु विष्टपेषु	-	तीनों लोकों में
पतीच्छयेव	-	पति की इच्छा से ही मानो
सर्वार्थसिद्धिः	-	समस्त अर्थों की सिद्धि
आयाति	-	प्राप्त होती है

भावार्थ - निर्दोष रत्नत्रय धारण करने वाले को धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप समस्त अर्थों की सिद्धि प्राप्त होती है ।

❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिम मङ्गल

श्लोक- **सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,**
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता -
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः॥१५०॥

ज्यों कामी को कामिनी, शुद्धशील माँ पूत।
कन्या कुल को दृष्टि त्यों करे सुखी रख पूत॥१५०॥

अन्वयार्थ -

जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी - जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों का दर्शन करने वाली
दृष्टिलक्ष्मीः - सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी
सुखभूमिः - सुख की भूमि होती हुई
मां - मुझे उस तरह
सुखयतु - सुखी करे, जिस तरह कि
कामिनी - स्त्री
कामिनमिव - कामी पुरुष को
भुनक्तु - रक्षित करे, जिस तरह कि
शुद्धशीला जननी - निर्दोषशीलव्रतों का पालन करने वाली माँ
सुतमिव - पुत्र को। और
संपुनीतात् - पवित्र करे, जिस तरह कि
गुणभूषा कन्यका - गुणों से सुशोभित कन्या
कुलमिव - कुल को

भावार्थ - अष्टमूलगुणयुक्त और सप्तशीलों से सुशोभित सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी मुझे उसी तरह सुखी करे, पवित्र करे एवं मेरी रक्षा करे, जिस तरह कि सुखभूमि कामिनी कामीपुरुष को सुखी करती है, गुणवान कन्या कुल को पवित्र करती है एवं शीलवती माता पुत्र की रक्षा करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल कामना

मुझे न सुर पद चाहिये ना विभूति बन भूप ।
निज अनुभूति नित करूँ मुनि पद के अनुरूप ।१।

सम परिणाम सुधर्म है मोह क्षोभ से हीन ।
मर्म धर्म का समझकर रहूँ उसी में लीन ।२।

तारन हारे तीर्थ औ मंदिर मूर्ति महान ।
सार साफ श्रुत का दिखे संस्कृति की पहचान ।३।

गर्व न तन धन का करो, करो न पर से राग ।
रजो तमो गुण से परे करो सत्त्व अनुराग ।४।

विजय पताका धर्म की फहरें उन्नत देश ।
रहे शान्ति अरू एकता यही भाव, उपदेश ।५।

चित्त चपल चंचल सदा भटके विषय विकार ।
तत्त्व ज्ञान अमृत चखा मन की करो सम्हार ।६।

दोष और गुण क्या रहे प्रथभ इसे तूं जान ।
हानि दोष, गुण वृद्धि कर, कर आतम कल्याण ।७।

जुति सुभक्ति भगवान की करे भवोदधि पार ।
वास लोक के शीश पर करूँ छोड़ संसार ।८।

दया दान तप ज्ञान से उन्नति करना भाइ ।
है जिनवर की देशना धर्म मूल सुखदाइ ।९।

❄

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान एवं समय परिचय

बीना बारह के निकट बहे नदी सुख चैन ।
दर्शन करने क्षेत्र के आते जैन अजैन ।१।

बने जिनालय भव्यतम अतिशयकारी क्षेत्र ।
श्रद्धा भक्ति भाव से खुलें हृदय के नेत्र ।२।

शांतिनाथ भगवान का मंदिर अतिशय शांत ।
कार्य वहीं पूरा किया बैठ प्रभू पद प्रान्त ।३।

नव इक पन द्वय पंचमी श्रुत, सन्मति निर्वाण ।
गुरूकृपा आशीष से हुआ कार्य आसान ।४।

रत्नकरण्डक का किया दोहा में अनुवाद ।
ध्येय, ध्यान बढ़ता रहे लूं समता का स्वाद ।५।

९१५२ अंकानाम वामतो गतिः के अनुसार वीर निर्वाण सम्वत् २५१९ विक्रम सम्वत् २०५० शक सम्वत् १९१५ ज्येष्ठ सुदी पंचमी [श्रुत पंचमी] दिवस पर सुखचैन नदी के समीपवर्ती श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बीना बारहा (देवरी-सागर) म. प्र. में २६ मई १९९३ ईस्वी. बुधवार के दिन श्री शान्तिनाथ जिनालय में यह दोहानुवाद का कार्य पूर्ण हुआ ।

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
4498
29-7-99
(का. हि. वि. वि.) वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

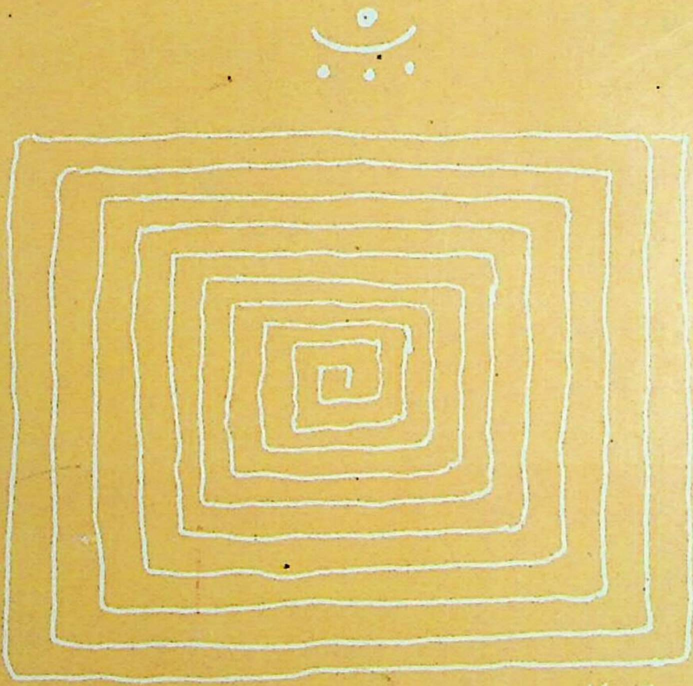

Ganesh Varni Digamb